UNIVERSAL LIBRARY

OU_180690

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
Call No. H83 | M96P Accession No. G.H. 1635
Author मुन्शी, क. मा.
Title पृथ्वी वल्लभ | 1946
This book should be returned on or before the date last marked below.

मुंशी साहित्य—१

पृथ्वी वल्लभ

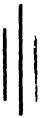

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

अनुवादित

किताब महल

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, १९४६

इस अनुवाद के सब अधिकार प्रकाशक के हैं।

प्रकाशक—किताब महल, जीरो रोड, इलाहाबाद।
मुद्रक—भगवतकृष्ण दीक्षित, दीक्षित प्रेस, इलाहाबाद।

वक्तव्य

प्रत्येक उन्नतिशील राष्ट्र के लिये समृद्ध साहित्य की प्रतिष्ठा आवश्यक होती है। इसी लिए सत्साहित्य की उपलब्धि वस्तुतः राष्ट्र-पूजा है।

यदि हम इस पर विचार करें कि साहित्य को समृद्ध बनाने के क्या-क्या विभिन्न उपाय हो सकते हैं तो हम देखेंगे कि नवीन तथा मौलिक साहित्य सर्जना से तो साहित्य समृद्ध होता ही है, पर अन्य भाषाओं के सुन्दर ग्रंथों के अनुवाद से अपनी भाषा का भंडार भरना भी कम महत्त्व का काम नहीं। सभी जानते हैं कि भारतीय फूल-पौधों में यदि फ्रारस का गुलाब भी हो तो उसकी महक और सौंदर्य उपवन की शोभा में चार चाँद लगा देते हैं, इसी प्रकार दूसरी भाषाओं के अनूदित ग्रंथ अपने साहित्योपवन में एक नवीन सुरभि का संचार करते हैं और वह हमारे विकास और कल्पना के लिये नवीन वातायन लगा देते हैं। शरत्चन्द्र के उपन्यास पढ़ कर हम अनुभव करते हैं जैसे हम बंगाली परिवारों में विचरण कर रहे हों, बंगाली समाज का चित्र हमारी आँखों के सामने खिंच जाता है। यह सिद्धांत सभी भाषाओं पर लागू होता है।

अपने हिंदी में अनूदित साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालने से पता चलता है कि अभी हिंदी में अनूदित साहित्य उतना नहीं जितना होना चाहिये। बँगला पुस्तकों के अनुवाद की ओर तो हिंदी साहित्य-

कारों का ध्यान गया किंतु गुजराती, मराठी तथा अन्य सुन्दर साहित्य रखने वाली प्रांतीय भाषायें अछूती ही रह गईं और यदि थोड़ा बहुत हुआ भी तो वह 'नहीं' के बराबर।

हमने गुजराती साहित्य के उपन्यास तथा कहानी साहित्य को हिंदी में अनूदित करा कर प्रकाशित करने का निश्चय किया है और सर्व-प्रथम हम गुजराती के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी का साहित्य हिंदी संसार में प्रकाशित करेंगे। आशा है, हिंदी संसार हमारे प्रयास का सहर्ष स्वागत करेगा और हमें प्रोत्साहन देगा।

—प्रकाशक

मूल लेखक की भूमिका

मुंज की तरफ़ अनेक लेखकों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। उन्होंने उसके सम्बन्ध में धीरे-धीरे लिखना आरंभ भी कर दिया है। मध्य-कालीन मालवा के कवि सहृदय भोज का नाम अमर कर गये हैं, तथापि उस प्रतापी देश का यथार्थ प्रतिनिधि तो मुंज ही था, ऐसा मानना पड़ेगा। यह बात निराधार नहीं है।

मुंज की विरुदावली से उस प्रबल पराक्रमशाली भूपति के प्रभाव का पता चलता है। तत्कालीन कविताएँ भी उसकी कीर्ति की साक्षी हैं। मुंज के समसामयिक कवियों में से निम्नलिखित हैं :—

(१) धनंजय—अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'दशरूपक', में मुंज के सम्बन्ध में कहा है—

विष्णोः सुतेनापि धनंजयेन
विद्वन्मनोरागनिबन्धहेतुः।
आविष्कृतं मुंजमहीशगोष्ठी
वैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत्॥

इसमें कवि ने अपनी विदग्धता का श्रेय मुंज की गोष्ठी को ही दिया है।

(२) धनिक—इस कवि ने संस्कृत और प्राकृत में कई काव्य लिखे हैं। 'दशरूपक' पर अवलोक नाम की एक सुंदर टीका लिखी है। कई लोग इसे धनंजय ही मानते हैं और किसी-किसी ने इसे धनंजय का भाई कहा है।

(३) धनपाल—यह सर्वदेव का पुत्र था। इसने 'पाइअ लच्छी' नाम से एक प्राकृतकोष लिखा है। जैन-धर्म में दीक्षित होने के बाद उसने 'ऋषभपंचाशिका' भी लिखी थी।

(४) भट्ट हलायुध—यह पहले मान्यखेट में था। कृष्णराज (प्रथम) की मातहत था। मुंज की राजसभा में यह पीछे आया। 'अभिधान-चिंतामणि' और 'कवि-रहस्य' ये उसके मौलिक ग्रंथ हैं। 'पिंगलसूत्र' की मृतसंजीवनी टीका भी भट्ट हलायुध की ही लिखी हुई है।

(५) पद्मगुप्त—मृगांकगुप्त का पुत्र था। मुंज के बाद गद्दी पाने वाले सिंधुराज के समय में पद्मगुप्त ने 'नवसाहसांक-चरित' लिखा। उक्त काव्य में लिखा है—

सरस्वतीकल्पलतेककंदम्
वंदामहे वाक्पतिराजदेवम्।
यस्य प्रसादाद्वयमप्यनन्य
कवीन्द्रचीर्णे पथि सञ्चरामः॥

"हम वाक्पति (मुंज) की वंदना करते हैं, क्योंकि वह सरस्वती रूपिणी कल्पना का कंद है। उसी वाक्पतिराज की यह कृपा है कि हम अद्वितीय अनुपम कवियों के पथ पर चलने में अपने को समर्थ पा रहे हैं।

दिवं यियासुर्मम वाचि मुद्रा
मदत्त यां वाक्पतिराजदेवः।
तस्यानुजन्मा कविबान्धवस्य
भिनत्ति तां सम्प्रति सिंधुराजः॥

"महाराज मुंज स्वर्ग जाते-जाते मेरी वाणी पर मुद्रा लगा गये थे, उस मुद्रा को उसका अनुज कविबन्धु सिन्धुराज तोड़ रहा है।"

इन कवियों के साक्ष्य से यही प्रमाणित होता है कि मुंज भोज की अपेक्षा कम काव्य-रसिक नहीं थे। मालवा के परमार राजाओं में मुंज का स्थान कुछ साधारण नहीं समझा जाना चाहिए, क्योंकि उसके दिग्विजय की ख्याति आज तक गूँज रही है। यह बात सकारण ही है कि मुंज ने मालवा के चारों ओर दिग्दिगंत तक अपना प्रताप फैला दिया था। उसने सोलह बार तैलप को पराजित किया था, यह बात एकदम तथ्यशून्य नहीं है।

तैलप स्वयं महान् विजयी था। उसने मान्यखेट में अपना साम्राज्य स्थापित किया था, ऐसा प्रतीत होता है। वह चालुक्य-वंशी था। कलचुरिराज लक्ष्मण की पुत्री बोन्था देवी का औरस पुत्र। राष्ट्रकूट राजा भम्मह की बेटी जक्कला के साथ उसका ब्याह हुआ था। चोल, चेदि, पांचाल और गुजरात जीत कर आखिर उसने मालवा को भी पराजित किया। अजेय मुंज को हराने का श्रेय केवल वही पा सका। उज्जयिनी पर उसकी पताका फहराई। उसने बहुत-सी उपाधियाँ धारण कर ली थीं। मुंज के साथ जो उसकी प्रतिद्वंद्विता थी इसलिए या किसी और कारण से, कहा नहीं जा सकता। महाराजाधिराज, परमेश्वर, परम भट्टारक, समस्त भुवनाश्रय, श्री पृथिवी वल्लभ, सत्याश्रय कुलतिलक, चालुक्याभरण, भुजबल चक्रवर्ती, रणरंगभीम आदि-आदि उपाधियाँ उसके नाम के साथ लगती थीं।

उसके एक लड़के का नाम अकलंकचरित अथवा सत्याश्रय था। स्यूनदेश का राजा भोल्लम तैलप का महासामंत था और उसी के हाथों मुंज पकड़ा गया होगा, यह प्रतीत होता है। उसकी स्त्री लक्ष्मीदेवी थाणा के राठौड़ राजा झंझा की लड़की थी। मृणालवती से सम्बद्ध किंवदन्तियों में बहुत कुछ ऐतिहासिक तत्त्व है।

बहुत से उपन्यासकार मुंज के प्रति आकृष्ट हुए हैं, मैं भी आकृष्ट हुआ। वर्ष पर वर्ष बीतते गये और मैं यह उपन्यास लिखने का विचार

करता ही आया। अंत में, स्वर्गीय बंधु हाजी मुहम्मद के दबाव से यह कथा आरंभ कर दी। खेद की बात है कि पुस्तक समाप्त होने से पहले ही उनका देहांत हो गया। नहीं तो पुस्तक को और अधिक सुन्दर बनाने वाली टीका-टिप्पणियों द्वारा उनकी कीमती सलाह का उपयोग कर पाता!

—कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

पृथ्वी वल्लभ

विक्रम की ११वीं सदी का समय था, हिन्दू राजा आपस में ही लड़-झगड़ रहे थे। राज्य एक तरफ़ स्थापित हो रहे थे तो दूसरी तरफ़ नष्ट हो रहे थे। महान् पराक्रमशाली दो-चार राजा अपना-अपना साम्राज्य निर्माण करने की कोशिश कर रहे थे। लोग सुखी और सभ्रान्त थे। उनका जीवन सादा लेकिन सक्रिय था। उनके आदर्श सरल परंतु सरस थे।

भारत अभी वीर्यहीन और निस्तेज नहीं हो गया था, उसकी संस्कृति को आत्मरक्षा के निमित्त अभी जड़ता नहीं अपनानी पड़ी थी। वैभवशाली और संस्कृति सपन्न आर्यावर्त उन दिनों स्वस्थता और स्वतन्त्रता का आनंद ले रहा था। मुहम्मद गजनवी ने अभी तक भारत में प्रवेश नहीं किया था। ईरान और तुर्किस्तान में पैदा होने वाली इस्लामी आँधी की भयानक आवाज अभी यहाँ सुनाई नहीं पड़ी थी। पराधीनता थी तो अपने देश वालों की ही और किसी अंश में अगर गुलामी थी, तो वह अपनी प्राचीन संस्कृति की।

इस शताब्दी के प्रतापी राजाओं में तैलंगण (तिलंगना) के चालुक्य-वंशीय तैलप की भी गिनती होती थी। वह संवत् १०२६ में सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। राष्ट्रकूट के राजाओं को पराजित करके दक्षिण भारत में उसने अपना एकछत्र राज स्थापित किया। इतना ही नहीं चोल, चेदि, पांचाल और गुजरात में भी अपना प्रभाव फैला कर संपूर्ण भारत का चक्रवर्ती होने की महत्त्वाकांक्षा थी। 'परमेश्वर' 'परम भट्टारक', 'समस्त भुवनाश्रय', 'सत्याश्रय कुलतिलक' 'चालुक्याभरण', 'भुजबल चक्रवर्ती', 'रणरंगभीम', 'आहवमल्ल' आदि उपाधियाँ धारण करने का सौभाग्य उसे प्राप्त हुआ।

चालुक्यराज की धवल कीर्त्ति पर केवल एक बहुत ही बड़ा धब्बा पड़ गया था। मालवाधीश्वर मुंज ने उसको अनेक बार हराया था, पकड़ कर अवन्ती ले गया था, और साधारण सामंत की तरह उससे अपनी सेवा करवाई थी। इस कलंक को दूर करने के लिये संवत् १०५२ में तैलप ने एक विशाल सेना संगठित की और तैलंगण पर चढ़ाई करने वाले अवंतिनाथ मुंज का मुक़ाबला करने गया!

तैलप जिस समय दक्षिण में अपने साम्राज्य की स्थापना करने का प्रयत्न कर रहा था, उसी समय मुंज उत्तर भारत में साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुआ। अवन्ती (उज्जयिनी) उन दिनों आर्य संस्कृति का केन्द्र थी। सालों से मुंज समूची भारतभूमि में अपनी जय-जयकार करवाता रहा। अपनी प्रशंसा में कवियों की प्रतिभा को कसौटी पर चढ़ाता रहा। रूप में कामदेव के साथ उसकी तुलना की जाती, उसके रसमय वाक्यों से कवि लोग मधुर रचनाओं के लिए प्रेरणा पाते; गणितज्ञ उसकी मदद से अपना शास्त्र पूरा करने का प्रयत्न करते। वह विद्या-व्यसनी था तथापि खून बहाना और जुल्म करना उसे अप्रिय नहीं था। उसके विषय में बहुत-सी अफ़वाहें उड़तीं और तैलप शासित प्रदेशों में वे और बढ़ा चढ़ा कर कही-सुनी जातीं। मुंज के नाम से सारा देश थर्राता था।

विषय-सूची

विषय				पृष्ठ
१—विलासवती	....	...	...	१
२—भिल्लमराज की विवशता		...	...	७
३—मृणालवती	...	...	...	१२
४—पृथ्वी वल्लभ	...	...	...	२१
५—वरदान	...	...	...	२८
६—रसनिधि	...	....	...	३७
७—रसिकता	...	...	...	४३
८—मयाश्रय	...	...	...	४८
९—प्रथम मिलन	...	...	....	५३
१०—दया	...	...	...	६१
११—रसनिधि का खेद	....	....	...	६४
१२—सद्धर्माचार	...	...	...	७०
१३—लक्ष्मीदेवी का रण-भूमि में प्रवेश		....	...	७५
१४—काठ का पिंजड़ा	...	...	...	८१
१५—माघ का संयम	....	....	....	८७
१६—फिर एक बार	....	...	...	९३
१७—कौन किसको सिखाए !		...	...	९९
१८—असहाय अवस्था	...	....	...	१०५

विषय				पृष्ठ
१९—काल-रात्रि	....	...	...	१०८
२०—पाद-प्रक्षालन	....	...	....	११३
२१—भाई और बहिन	....	....	...	१२३
२२—विलास का स्वास्थ्य	...	....	....	१२५
२३—तप की महासिद्धि	....	....	....	१२९
२४—भोज	....	....	....	१३४
२५—मुंज	....	....	....	१३९
२६—लक्ष्मीदेवी की स्वीकृति		....	....	१४५
२७—मृणाल ने रास्ता निकाला		....	....	१४७
२८—मध्य रात्रि	....	....	....	१५१
२९—षड्यंत्रकारियों की खोज		....	....	१५५
३०—विलास कैसे छूटी ?		....	....	१६१
३१—लक्ष्मीदेवी ने तैलंगण क्यों छोड़ा ?		....	....	१६७
३२—भिक्षा	....	....	....	१८३
३३—मुंज किस प्रकार अटल रहा ?		....	....	१७९

१

विलासवती

संवत् १०५२

वैशाख की १० वीं तारीख थी। शाम का वक्त था। तैलंगण की राजधानी मान्यखेट का राजमहल—अन्दर ही एक शिवालय था उसमें एक बाला पद्मासन लगाये बैठी थी।

नगर में अशांति थी। आक्रमण करने वाले राजा के संबंध में बड़ी-बड़ी गप्पें फैल रही थीं। कोई कहता—मुज गोदावरी पार करके शहर पर धावा बोलने के लिए आ रहा है। कोई कहता—तैलप ने मुंज को हरा दिया; कोई कहता मुंज और तैलप द्वंद युद्ध में कट मरे, इनमें क्या सच है और क्या झूठ सो कौन कहे। लेकिन नई-नई बातों के साथ साथ लोगों की चिंता बढ़ती जाती थी।

इतना कुछ होते रहने पर भी वह बाला शान्ति से बैठी थी। ध्यानमग्न होने का अभिनय करते समय उस मृग-नयनी की चंचल आँखें धीरे-धीरे गुपचुप दृङ्ग से चारों तरफ़ का चक्कर मारा करतीं। वह ऐसी लगती मानों जगदंबा पार्वती अंकुरित नवयौवना भोलनी का वेष धारण करके पति की परीक्षा लेने आई हो और शंकर का ध्यान कब भंग होता है, इसकी प्रतीक्षा कर रही हो।

इस किशोरी का सौन्दर्य बहुत ही आकर्षक था, वह वल्कलवसना थी, उसके उत्तरीय परिधान से निकलती हुई सरल श्वेत और कम्बु सदृश ग्रीवा तापसों की तपस्या भंग करने को प्रतीत होती थी। छोटी-सी बढ़िया नाक, नन्हा-सा मुँह, रसीली और चमकती हुई काली-काली आँखें ऐसी थीं कि जिन्हें देख-देख कर बड़े-बड़े महर्षि अपने आपको भूल सकते थे। योगीश्वर शिव का मंदिर था। परिधान में

वल्कल थे और था पद्मासन—तथापि वहाँ का वायुमण्डल सरस और भावुकतापूर्ण था। कोमल कामनाओं की लहरें उठ रही थीं फिर भी उस किशोरी के ललाट पर सिकुड़न-सी आकुंचित रेखायें खिची दीखती थीं, मुख-मंडल उदास लगता था, आँखों में उस खरगोश की-सी घबराहट थी, जिसका पीछा कोई शिकारी कर रहा हो।

कुछ देर उसने चारों तरफ़ देखा, फिर पद्मासन छोड़ दिया। और हाथों की छोटी-छोटी मृदुल मनोरम उँगुलियों को एक दूसरे में उलझा कर आलस्य को जैसे विदाई-सी दे दी।

पास की छोटी-सी बगीची में पत्तों की मर्मर ध्वनि आई. किसी के आने का यह लक्षण था। किशोरी ने झट पद्मासन लगाया, आँखें मीच लीं, ध्यानावस्थित होने का दिखावा किया।

मंदिर की सीढ़ियों पर तीन स्त्रियों ने पैर रखे। उनमें से एक वल्कल-वसना थी और आगे-आगे वही चल रही थी। उसका कद लंबा था, देखने में वह बलिष्ठ प्रतीत होती थी। अंगों की एक-एक रेखा पूर्ण थी, केवल शिर के बाल कुछ-कुछ सफेदी लिए हुये थे। चेहरा चेचक के चिह्नों से ज़रा-सा विद्रूप लगता था किन्तु, फिर भी प्रभावशाली था। आँखों में तीव्र तेज था, होठ दबे हुए थे, उनसे दृढ़ता टपक रही थी। अंगों से यौवन की मादकता छलकी पड़ती थी यद्यपि अवस्था ढल चुकी थी।

उसके पीछे चलने वाली दोनों स्त्रियाँ सुन्दरी थीं। कीमती कपड़े और गहने उनकी स्थिति के परिचायक थे। पहली स्त्री का मुख-मंडल गम्भीर और आँखें स्थिर थीं उनमें एक प्रकार की मादकता छाई हुई थी। दूसरी दो औरतों का चेहरा भयभीत और चिन्तापूर्ण लगता था। उनकी आँखें अश्रुसिक्त मालूम होती थीं। आगे वाली वल्कलवसना तापसी और कोई नहीं, वह तैलप की विधवा बहन मृणालवती थी, दूसरी दो स्त्रियों में से जो स्थूलांगी थीं, वह थी तैलप

की रानी जक्कला और दूसरी थी उसकी चचेरी बहन लक्ष्मीदेवी स्यून देश के यादव राजा महासामन्त मिल्लम की पत्नी।

मृणालवती सबसे पहले मन्दिर के अन्दर घुसी और लक्ष्मी को सम्बोधित कर कहा—"मैंने क्या कहा था? तुम्हारी लड़की ध्यान-मग्न है।"

लक्ष्मी देवी ने दबी आवाज से हाँ कहा। शान्त, कठोर और अधिकार-पूर्ण ध्वनि में मृणालवती ने पुकारा "विलास! विलास!!"

मानो अभी ध्यान-भंग हुआ हो, ऐसे ढंग से विलास ने आँखें खोलीं और चौंकने की मुद्रा दिखलाई।

"विलास" कड़ी आवाज में मृणालवती ने कहा,—"जा, बाहर बैठ बेटी। किसी की आहट मिले तो मुझे तुरत खबर देना।"

विलास ने उस तापसी के चरण छुये और चुपचाप बाहर हो गई। मृणालवती के आदेशों का अक्षरशः पालन करना उस लड़की का स्वभाव बन गया हो, ऐसा ही लगता था।

विलासवती मन्दिर के चबूतरे पर गई और ऐसी जगह खड़ी हुई जहाँ से भीतर की बात साफ़ सुनाई दे।

उस मिन्दर में मूल्यवान काले पत्थर की बनी हुई नन्दी की एक विराट प्रतिमा थी। उसीके पास खड़ी होकर मृणालवती बोली—"जक्कला?"

"जी" जक्कला ने कहा।

"देखो, मैंने जिसकी बात की थी, वह यही जगह है। मान्यखेट से गायब होना हो, तो उसका एक मात्र यही मार्ग है।"

"लेकिन मुंज के आने की कोई खबर.....?"

मृणालवती की भौंहें तन गईं, एक तीखी नजर ने बीच ही में लक्ष्मी को रोक दिया।

"कोई खबर होती तो मैं कहती नहीं?" तापसी का स्वर कड़ा था।

लक्ष्मी देवी ने अपने होंठ चाप लिये और चुप रही।

"देखो इस नन्दी के नीचे से सुरंग है" मृणालवती ने कथा का क्रम जारी रखते हुये कहा।

धीमे स्वर में सम्मानपूर्वक जक्काल ने पूछा--"कहाँ निकलती है?"

मृणाल ने कहा—"भुवनेश्वर के मन्दिर में।"

"वह तो बिलकुल जंगल में है?"

कुछ कहने के पहले ही मृणालवती ने घूम कर देखा। गर्भद्वार में विलासवती को खड़ी देखकर कड़ी आवाज में उसने पूछा—"क्यों आई?"

"बाहर पिता जी खड़े हैं।"

"महासामन्त?"—भयंकर स्वर में मृणाल ने पूछा।

"ऐं!"—लक्ष्मी के मुँह से अचानक निकला।

अनिष्ट की आशंका से जक्कला देवी घबड़ा गई। सहारा लेने के लिए उसने दीवाल पर हाथ टेक दिये।

"बुलाओ"

"जो आज्ञा।" विलास बाहर चली गई और पिता को साथ लिये अन्दर लौटी।

महासामन्त भिल्लम का डील-डौल ऊँचा और भरा-पूरा था। वह शत्रुओं के हृदय में आतंक उत्पन्न कर देने वाला महाप्राण योद्धा था, उसने शरीर पर कवच धारण कर रक्खा था। उसके हाथ और कपाल पर दो पट्टियाँ बँधी हुई थीं।

"बहन मृणाल, महाराज आहव मल्ल की जीत हुई।"

'हैं!' जक्कला के मुँह से निकल पड़ा।

शान्ति से उसकी ओर घूमकर मृणाल ने आँखें फाड़ी और पूछा "कब?"

"परसों; मुंज गोदावरी पार करके इस ओर आना चाहता था कि महाराज ने सहसा आक्रमण कर दिया।"

जक्कला, लक्ष्मी और विलास तीनों का चेहरा हार्दिक आनन्द से उद्भासित हो उठा। परन्तु तापसी के अधर-ओष्ठ भीषण दृढ़ता से दबे रहे।

"उसकी फौज का क्या हुआ ?"

"कुछ पकड़ी जा सकी और कुछ भाग गई।"

"महाराज तो सकुशल हैं" जक्कला ने धीरे से पूछने की हिम्मत की !

"बस, इतने ही में अधीर हो गई" कड़कती आवाज में मृणाल ने कहा और आगन्तुक से फिर प्रश्न किया, "उस नर-पिशाच का तो कहो क्या हुआ ?"

"किसका, मुंज का न ?" महासामंत ने प्रश्न किया।

सर हिलाते हुए मृणाल ने 'हाँ' कहा।

महासामन्त ने सुस्मित मुख होकर सगर्व कहा, "उसे तो मैंने पकड़ रखा है।" मन ही मन महासामन्त के गर्व को तिरस्कृत करती हुई मृणाल कुछ देर तक एकटक उसी की ओर देखती रही। भिल्लम ने फिर कहा—"कल महाराज की सवारी यहाँ आने वाली है, मैं यही सूचित करने आया हूँ।"

"अच्छा, फिर तो तैयारी करने का आदेश देना चाहिये। चलो महासामंत चलें।"

महासामंत का विचार वहाँ से हटने का नहीं था। "चलिये, मैं अभी आया ....."

मृणाल ने तिरस्कारपूर्वक कहा—"भिल्लम राज तुम भी अब तक ज्यों के त्यों बने हुये हो। तुम्हारे हृदय में सात्विकता का नाम मात्र भी नहीं है।"

महासामंत चुपचाप मुसकराता रहा।

मृणाल ने कहा—"अच्छा, चलो जक्कला .....और विलास तुम भी।"

"बहन, तुम चलो, इसे मैं अभी भेजे देता हूँ" महासामंत बोला।

"तुम दोनों माँ-बाप इस लड़की को बिगाड़ रहे हो, फिर यह बेचारी निष्कलंक क्यों कर रह सकती है? अच्छा, विलास देर न करना" यह कह कर मृणालवती चली गई, जक्कला भी साथ हो ली।

२

भिल्लमराज की विवशता

मृणालवती के चले जाने पर तीनों के दम में दम आया। उन्होंने खुल कर साँस ली।

"महाराज!" लक्ष्मी ने क्षण भर मौन रह कर कहा, "कैसी तबियत है आप की!"

भिल्लम हँस पड़ा, उसकी आँखें स्निग्ध हो उठीं, "अच्छा हूँ, दो-चार घाव लगे हैं, पर बाजी मेरे हाथ रही।" हर्षातिरेक में मुग्ध होकर महासामंत कहता गया, "यदि मैं न होता तो मुंज को पकड़ना असंभव था और महाराज पर कोई न कोई संकट आ पड़ता।"

"ओह! ऐसा?"

"बात तो ऐसी ही थी। मालवराज और तैलपराज के बीच घनघोर युद्ध हुआ।"

"द्वंद्व युद्ध!"

"हाँ, द्वंद्व युद्ध ही। उनके महावत मारे गये फिर नीचे उतर कर दोनों भिड़ गये।"

"और?"

"और क्या पूछती हो, कहाँ मुंज और कहाँ तैलपराज। महाराज का शरीर बुरी तरह से आहत हो गया था, वह धराशायी होने वाले ही थे कि मैंने देख लिया, मैं उसी क्षण दौड़ पड़ा और मुंज का मुक़ाबला किया। देवी, हमारी इस लड़ाई का हाल मत पूछो, चार घड़ी भी किसी ने दम नहीं लिया। तीनों लोक यह दृश्य देख रहे थे।"

महासामन्त ने एक बार दीर्घ निश्वास छोड़ा। लक्ष्मी और विलास आतुरतापूर्वक उसकी ओर देख रही थीं।

"मेरे लिए भी यह एक कसौटी ही थी किन्तु अंत में, विजयी मैं ही हुआ। मुंज ने जरा ठोकर खाई और मैंने उसे धर दबाया।"

लक्ष्मी ने अपने को ऐसे पति पर न्यौछावर करते हुये कहा, "शाबाश, मेरे देवता!"

विलासवती ने धीरे से पूछा—"बापू कैसा है वह मुंज?"

"कल देख लेना, बड़ा ज़बर्दस्त है। जैसे ही मैंने उसे धर दबाया, मुस्कराते हुए उसने मेरी पीठ थपथपायी और बोला—'भिल्लमराज धन्य है, पृथ्वी पर तूही यह कर सकता था।"

"अरे वाह!" लक्ष्मी देवी ने कहा।

"पिता जी, मैं कैसे उसे कल देख सकूँगी," विलासवती ने पूछा।

"क्यों भई, क्या बात है?"

"महाराज" लक्ष्मी कुछ पास सरक आई और दाँत पीसती हुई बोली, "यहाँ तो अन्धेर मचा हुआ है।"

उस महिला की आँखों से आवेश के मारे मानों चिनगारियाँ निकल रही थीं।

"क्यों" महासामन्त ने उत्सुकता प्रकट की।

"महाराज आपके दिन तो लड़ाई-भिड़ाई में ही बीतते रहते हैं, हमारी मुसीबत का आपको क्या पता है, हम कैसे जकड़ गई हैं! जकला देवी ही जब कुछ नहीं कर सकीं, तो हम कौन?"

यह कहते-कहते लक्ष्मीदेवी का चिरसंचित क्रोध फूट पड़ा। आँखों से उसने आँसू पोंछे और बोलने लगी, "अपनी तो मुझे चिन्ता नहीं परन्तु कच्ची उमर की इस छोकरी का जीवन व्यर्थ ही बरबाद हो रहा है।"

भिल्लम ने किंचित दुखित स्वर में कहा—"देवी! तुम तो जानती ही हो यह पराधीनता हमने क्यों अपना रखी है, यह तुमसे छिपी थोड़े है।"

"जानती हूँ नाथ, सब जानती हूँ", आकुलतारहित स्वर में लक्ष्मी

ने कहा—"पर मैं तो थक गई। तुम्हारे जैसे महारथी को इससे अच्छी नौकरी जहाँ चाहोगे वहीं मिल जायगी।"

महासामन्त ने लम्बी साँस ली और अपनी सहधर्मिणी को शान्त करने की चेष्टा करते हुए कहा—"देवी! तुम बहुत जल्दी घबड़ा उठती हो। अगर तुम्हें पराधीनता से प्राप्त ये रोटियाँ काटती हैं तो क्या मुझे नहीं काटतीं? मेरी ग़रीब रैयत लाचार हालत में पड़ी हुई है और तुम महाराज की राजकुमारी...."

राठौड़ राजाओं के कुल में उत्पन्न हुई लक्ष्मी ने टोक दिया, "नाथ! यह सब मैं अपने लिये कह रही थी?"

भिल्लम ने तिलमिला कर कहा—"नहीं श्रीमती जी! यह मैंने कब कहा है, प्रजा के प्रति जो मेरा भाव है वही तुम्हारा है, मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ किन्तु मैं स्वयं यहाँ निराधार हूँ, निरावलम्ब हूँ, तैलप की कीर्त्ति का वाहन हूँ। परन्तु क्या किया जाय, आठ-आठ साल लड़े, विधि विधान ने कुछ नहीं होने दिया, अन्त में इस एकमात्र बालिका के लिए यह अधमता—"

विलासवती दूर खड़ी-खड़ी सब सुन रही थी, वह बड़ी मुश्किल से आँसू रोकने के प्रयत्न करती रही। लक्ष्मी की आँखों से छल-छल आँसू बह रहे थे। भिल्लम ने प्रसंग का क्रम बदला, "बेटी तू तो सुखी है?" पिता ने पुत्री की ओर मुँह करके कहा।

विलास धीरे से बोली—"जी सब ठीक है।"

लक्ष्मी ने भौंहें नचा कर कहा—"यह बेचारी सुख-दुख क्या जाने, यह तो मृणाल बहन के आधीन है। उन्होंने कुमार सत्याश्रय को जैसा अकलंक बना डाला है, वैसा ही कच्ची कली जैसी मेरी पुत्री को भी बनाना चाहती हैं।"

"क्यों विलास, तुम्हारा क्या विचार है?" महासामंत ने फीकी हँसी हँस कर कहा।

विलास मधुर स्वर में बोली—"माँ तुरत घबड़ा जाती हैं, मुझमें तो अब बहुत कुछ सहनशीलता आती जा रही है।"

"बेटी तू कुमार सत्याश्रय के योग्य हो जाय और उनके साथ तेरी शादी कर दी जाय. तभी मुझे चैन मिलेगा।"

"चेष्टा तो वैसी ही कर रही हूँ।"

"हाँ ठीक है" लक्ष्मी ने कहा, "और जब यह जवानी जल कर राख हो जायगी, तब तू योग्य होगी।"

महासामन्त ने बेटी से कहा—"विलास, आज तुम्हारी माँ कुपित है, इसका पित्त तेज हो गया है, इसकी बातों पर ध्यान न देना। अच्छा चलो अब हम चलें। आज मैंने कुछ सोचा है।"

"क्या सोचा है" लक्ष्मी ने पूछा।

"महाराज से कोई वर मागूँगा। मेरी सेवा देख कर वह कुछ न कुछ देंगे अवश्य।"

"ओह! कैसी लाचारी है" लक्ष्मी ने फिर कटाक्ष किया। इस पर भिल्लम ने ध्यान नहीं दिया। वह कहने लगा, "विलास की शादी हो जाय फिर हम लोग देश को चलें।"

"यह सूरज कभी उगेगा भी!"—शंकाशील लक्ष्मी ने उत्तर दिया।

"उगेगा और अवश्य उगेगा। घबड़ाओ नहीं....चलो चलें" इसके बाद तीनों मन्दिर से निकले।

"मुंज को देखना है पिता जी!"

"कल सवारी निकलेगी तो देख लेना।"

"इस बेचारी के भाग्य में वह लिखा भी तो हो" लक्ष्मी ने कटुतापूर्ण स्वर में कहा, "मृणाल कहेगी कि रहने भी दो, इस प्रकार की जिज्ञासा से तो इस लड़की का वैराग्य व्रत ही खंडित हो जायगा। उनके सामने

तो सोलह साल की विधवा और उतने ही साल की किशोरी दोनों बराबर हैं।"

"यह क्या बकती हो?" महासामन्त ने कहा, 'कोई सुन लेगा, इसका भी होश है?"

"पिता जी, मृणाल बहन से यदि स्वयम् कहो तो मान जायेगी" विलासवती बोली।

"हाँ, कहूँगा और अवश्य कहूँगा," इतना कह कर भिल्लम चुप हो गया।

३

मृणालवती

मृणालवती और जक्कला देवी साथ ही साथ महल में गईं और कला की शोभा-यात्रा (सवारी) के लिए तैयारी करने का हुक्म देने लगीं !

मृणालवती की अवस्था छियालीस वर्ष की थी। तीस वर्ष पहले उसके पति का देहांत हो चुका था और तभी से वह दुनियादारी छोड़ कर वैधव्य जीवन बिताती आ रही थी। तैलप उससे पाँच साल छोटा था। माँ के मर जाने के कारण बड़ी बहन ने ही मातृ सुलभ ममता से उसका लालन-पालन किया था। उछलना-खेलना-कूदना हथियार चलाना आदि बहन की देख रेख में ही तैलप ने सीखा था। शासन करने की शिक्षा भी उसे बहन से ही मिली थी। मृणाल ने ही पानी चढ़ा कर उसे तेज़ तलवार बनाया था। और इस प्रकार वह स्वयं भी अपनी व्यक्तिगत वेदना को भूलने में समर्थ हो सकी थी।

सयाना होने पर तैलप गद्दी पर बैठा। मृणाल ने शासन के कार्यों में भी अपनी बुद्धि लड़ाना आरम्भ किया क्योंकि तैलप इस कला में मृणाल की तरह चतुर नहीं था। फल यह हुआ कि थोड़ी ही अवधि में तैलंगण की शासन-सत्ता उसके हाथों में आ गई। तैलप शासन करता था और शांति-स्थापन करता था। देश-विदेशों में अपनी आन का प्रचार करता, लेकिन मृणाल के आगे वह छोटा भाई ही बना रहता। बहन का एक शब्द भी वह अमान्य नहीं समझता। बहन की ही बुद्धि से वह शासन चलाता, उसी से उत्साहित होकर वह लड़ाइयाँ लड़ने जाता।

मृणालवती की प्रकृति बचपन में स्नेहपूर्ण और रसमय थी। जैसे-जैसे यौवन विकसित होने लगा, वैसे-वैसे ही उसके अंतर में

अनेक उद्दाम तरंगें उठने लगीं। कुछ तरंगें तो विधवा होने के कारण दबा देनी पड़तीं, कुछ तरंगें शासनाधिकार हाथ में होने के कारण दबा देनी पड़ती और तैलप का चरित्र शुद्ध तथा सरल बने, इसलिये भी कुछ तरगों को दबाना पड़ता था। परिणाम यह हुआ कि मृणालवती की विरक्त जीवन में दिलचस्पी बढ़ी।

वह धीरे-धीरे सुख और दुख का अनुभव करने वाली अपनी सहज मृदुता को खो बैठी। आर्द्र और करुण भावों को तिलांजलि दे बैठी। इस सबके लिये उसने भयङ्कर तपस्या अपनाई। इस तपस्या ने उसके हृदय को शुष्क और निश्चयात्मक बुद्धि को और भी निस्पंद और निश्चल बना दिया।

जब उसकी चर्या बदली तो संसार के प्रति उसका दृष्टिकोण भी बदल गया। उसने सुख-दुख के पंक में सभी प्राणियों को बिलबिलाते देखा, और उसे लगा कि बिना पूर्ण वैराग्य के संसार का निस्तार नहीं है। इस प्रकार उसकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। राज्य भर में उसका प्रभुत्व सर्वसाधारण को मान्य था और इस अधिकार का उपयोग जनता के उद्धार के लिए न करना उसको महापाप प्रतीत होता था। जिस तरह उसने अपनी तरंगों को बस में किया था, जिस तरह अपने अशांत हृदय को प्रकृतिस्थ और कठोर बनाया था, प्रजा-जीवन में उछलती तरंगों, आनन्द और मृदुता को भी उसी प्रकार संयत करने का प्रयास किया। इस नीति का अनुसरण करके उसने बहुत से शासन-पत्र निकाले। कवियों, नटों और गायकों को उसने देश निकाला दिया। आनन्दोत्सव रोक दिये। दिखावटी तौर पर रोना-कलपना इस पर भी उसने अंकुश लगाया, नगर और राजधानी में कठोरता और स्वस्थता फैल गई। हरेक प्रकार के संबंध शुष्क, नियमित और निष्कलंक होते गये। प्रेम, उत्साह, आनन्द यह सब अपराधों में गिना जाने लगा।

प्रेमीगण प्रगट रूप में सहधर्मचारी ही बने रहे। आनन्द-मग्न

कुटुम्ब एक यन्त्र के चक्र से हो गये। उत्सव के अवसर कड़े नियमों के कारण रसहीन हो गये। कवियों का स्थान तत्त्वज्ञानी और तपस्वियों ने ले लिया। नीति और नियम की ज्वाला में जनजीवन की स्निग्धता समाप्त हो गई। स्नेह, आनन्द और उमंग का उपभोग लोग चुपचाप, एकान्त में अधिकारियों से डर कर, अज्ञात रीति से करने लगे।

सत्याश्रय तैलप राज का पुत्र था। जब उसने पढ़ने लिखने की अवस्था में पदार्पण किया तो उसकी भी शिक्षा का भार भी मृणालवती ने ही उठाया। धीरे-धीरे सत्याश्रय भी अपनी बूआ के आदर्शों के अनुसार ही अपना चरित्र विकसित करने लगा।

इस कठोरता का परिणाम अच्छा ही निकला। तैलंगण के योद्धा कठोर, दृढ़ प्रतिज्ञ और निडर होते गये। तैलप राज आसानी से दिग्विजय करने लगा। इस दिग्विजय का पहला निशाना हुआ स्यून देश। भिल्लम राज के संकल्प को पहले पहल उसी ने तोड़ा। महासामन्त को धराशायी बनाने के लिये उसने समरांगण में बड़ी कोशिश की परन्तु भिल्लम के जीवन की डोरी लंबी निकली। उसको बंदी बना कर मान्यखेट लाया गया परन्तु तैलप राज उसे मारने की चेष्टा में सफल नहीं हो पाया। मृणाल ने महासामन्त का पक्ष लिया। उसको मरने से बचाया, उसका राज-पाट वापस दिलवा दिया। उसकी एक मात्र लड़की विलासवती से सत्याश्रय का विवाह करना निश्चित किया परन्तु करुणा के इन आभारों के लिये महासामन्त को बहुत बड़ा मूल्य देना पड़ा। उसको सपरिवार तैलंगण की राजधानी में रहना पड़ा, आहव मल्ल का महासामन्त बन कर उसके यश को बढ़ाना पड़ा। विलासवती को निष्कलंक, नियमित, शुष्क जीवन का पाठ पढ़ाने के लिये तापसी मृणालवती के कठोर नियंत्रण में दे देना पड़ा।

वैराग्य का उद्देश्य सिद्ध करने वाली; विमल, कठिन और निश्चल नियमों को अपने तथा दूसरों के जीवन में प्रेरित करने वाली मृणालवती तैलंगण की अधिष्ठात्री थी। ऐसे निर्द्वन्द्व हृदय में भी एक वस्तु

के लिये स्थान था और वह थी उसके भाई की कीर्त्ति। बचपन से ही मृणालवती ने तैलप को उत्साहित करने और उसमें साहस भरने के प्रयास किये थे और उन प्रयासों से तैलप जिस यश का भागी बना था उसे मृणाल अपना ही यश समझती थी। उस यश के पथ में बाधा डालने वालों को कुचलने के लिये वह अपनी प्रभावपूर्ण और निश्चयात्मक बुद्धि का उपयोग करती थी।

अवंतिपति मुंजराज महाराज आहवमल्ल (तैलप) की कीर्त्ति कौमुदी के लिये राहु था। पंद्रह-सोलह बार तैलप को उसने धूल चटवाई थी। तैलपराज इससे तंग आ गया था और कई बार अधीन राजाओं की तरह कर देकर, शांतिपूर्वक राज भोगने का इच्छा की था। परन्तु इस इच्छा के अंकुर मृणाल के दृढ़ निश्चय के आगे कुम्हला जाते थे। वास्तव में, मुंज और तैलप के झगड़े में मुंज और मृणाल की प्रबल इच्छा शक्तियों का दारुण द्वन्द्व-युद्ध ही चल रहा था।

अन्ततः मृणाल की विजय हुई और मुंज हार गया। यह सोचते हुये मृणाल के सूखे, वैराग्य-विलासी अंतस्तल में संतोष और अभिमान का संचार हो आया, जिस प्रकार घोर निर्जन एकांत में मलयानिल हवा का झोंका आ गया हो। मुंज भारतवर्ष में पृथ्वी वल्लभ के नाम से प्रख्यात था। ऐसे पृथ्वी वल्लभ को भी मृणाल ने दास बना लिया था इससे बढ़ कर भला और संतोष की बात हो ही क्या सकती थी!

जक्कला के साथ मृणाल जब राजप्रासाद में लौटी, तब उसके हृदय में अप्रकट रूप से यह विचार उत्पन्न हो आये। महल में आकर उसने सवारी की तैयारी का आदेश दिया और नगर के सकल साधारण नियमों को नष्ट करके किस प्रकार सवारी धूम-धाम से निकाली जाय, इसकी योजना बनाने के लिये प्रतिष्ठित नागरिकों को बुला भेजा।

इसी समय महासामन्त अपनी पुत्री और पत्नी के साथ आ

पहुँचा। उसके मुँह पर विषाद की रेखायें खिंची हुई थी, स्त्री के मुँह पर अस्फुट तिरस्कार था, लड़की बेचारी ज्यों की त्यों शान्त और मृदुल दिखलाई पड़ रही थी।

"बहन, तैयारी का आदेश कर चुकी?" भिल्लम ने पूछा। मृणाल ने कठोर स्वर में कहा "क्यों?"

"हम पृथ्वी वल्लभ को ले आये हैं, तैयारी उसके योग्य ही होनी चाहिये।"

क्षण भर के लिये मृणाल की तेज आँखों में तीखापन आ गया। उसने कहा, "महासामंत!··· ···" किन्तु दूसरे ही क्षण जरा शांत होती हुई वह बोली "अब पृथ्वी ने वल्लभ को बदल दिया है।"

भिल्लम ने हँस कर कहा,—"तो इसकी खुशी में भी हमें उत्सव मनाना चाहिये।"

भौंहें सिकोड़ते हुये मृणाल बोली—"तुम लोगों को तो सदा ही आनन्द उत्सव मनाने की पड़ी रहती है। कब तुममें सुबुद्धि आयेगी?"

"बहन! यह कोई साधारण प्रसंग नहीं है।"

भिल्लम की इस बात से चकित होकर मृणाल ने उसकी तरफ़ देखा। भिल्लम के मुख-मंडल की ओर दृष्टि डाल कर मृणाल को अनुभव हुआ कि यह अपनी विजय भावना से उन्मत्त हो रहा है तो उसके हृदय में महासामंत के प्रति घोर अवहेलना का भाव उदय हुआ पर उसने इस भाव को दबा कर पूछा "क्यों?"

"मुंज जैसा नर-रत्न सौ वर्षों में सम्पूर्ण पृथ्वी पर कोई एक हो सकता है, हजार वर्षों में दिखाई पड़ सकता है; परन्तु दस हजार वर्षों में भी उसे इस प्रकार पकड़े जाते नहीं देखा जा सकता।" तिरस्कारपूर्ण, स्थिर दृष्ट से मुंज की यह प्रशंसा मृणाल सुनती रही। फिर बोली 'तुम आज बहुत अस्वस्थ मालूम होते हो।" मृणाल ने इस प्रकार कहा जैसे नंगी तलवार हाथ से छूट कर झनझना उठी हो।

दूसरा समय होता तो महासामंत चुप भी रह जाता; परन्तु अपनी जीत और लक्ष्मीदेवी के कठोर वचन उसके हृदय में असीम साहस पैदा कर रहे थे। उसने कहा, "क्यों नहीं चौरासी योनियों में भाग्य से ही, ऐसे नर रत्न को एकाकी पराजित करने का अवसर मिल सकता है।"

"महासामंत, यह अहंभाव सारे पापों का मूल है" सिंहनी की तरह मृणाल के इस भीषण स्वर ने वीर भिल्लम के सबल हृदय में आतंक पैदा कर दिया।

"परन्तु बहन, तुम्हें एक काम तो अवश्य करना पड़ेगा।"

"क्या ?"

"कल सवारी देखने आना होगा।"

"मुझे !.....मैं ?"

मृणाल ने इस 'मैं' का उच्चारण इस प्रकार किया, जैसे वह सामान्य मनुष्य जाति से निकल कर किसी ऊँचे पद पर पहुँच गई हो।

"हाँ, कल का-सा प्रसंग फिर जन्म-जन्मान्तरों में भी नहीं उपस्थित होगा। मुंज के पकड़े जाने का श्रेय तुम्हीं को है अतएव बहन तुमको तो अवश्य ही आना चाहिये।" ज़रा हँसती हुई मृणाल बोली, "आँखों को संतुष्ट करने का प्रायश्चित्त मुझे कितना करना पड़ेगा ?"

"तुम अपनी जिज्ञासा को संतोष देने थोड़े ही आओगी ? इससे तो लोगों को संतोष मिलेगा।"

"महासामंत, पाप करने और पाप कराने में मैं कोई भेद नहीं समझती। फिर भी मैं रात को विचार करूँगी।"

"इस लड़की को भी सवारी दिखलाना है।"

मृणाल ने भौंहें सिकोड़ते हुये कहा, "भिल्लमराज, निश्चय ही तुम इस लड़की को बिगाड़ डालोगे।"

विलास की तरफ़ देखती हुई मृणाल ज़रा कठोरता से बोली, "तूने

आज तक सवारी नहीं देखी ! सेना नहीं देखी ! तैलपराज को नहीं देखा ! यह सब देखने की इतनी उत्कंठा ?"

भिल्लम ने कहा—"किन्तु, यह बेचारी मुंज को कब देखेगी ?"

रोमांच उत्पन्न करने वाले अवहेलना भरे शब्दों में मृणाल ने कहा—"मुंज में क्या देखने का है, हड्डियों का वही ढाँचा, वही चमड़ी, नरक की बनी हुई वही देह !"

"परन्तु बहन हड्डियों का वह ढाँचा कुछ और ही है" महासामंत ने हँसते हुये कहा ।

"कैसा ?"

"उसका-सा रूप मैंने कभी नहीं देखा ।"

"रूप ! रूप ! कह क्या रहे हो ? सीधी और टेढ़ी नाक में क्या अन्तर, बड़ी और छोटी आँख में क्या भेद, आखिर सभी जल कर भस्म ही तो हो जायँगे । मुंज में रूप है तो क्या उसे जलने में विलम्ब होगा ?"

"बहन, देखोगी तो ज्ञात हो जायगा । मैं कवि नहीं—"

मृणाल ने हँस कर कहा—"अच्छा हुआ; नहीं तो तुम्हें भी निर्वासित करना पड़ता ।"

"परन्तु जो न हो, उसे भी—"

"महासामन्त, अब बहुत हो चुकी"

"जो आज्ञा । परन्तु विलास—"

मृणाल के मुख-मंडल पर फिर कठोरता छा गई । उसने कहा—"विलास ! अच्छा, मैं आऊँगी तो उसे भी साथ लेती आऊँगी, ठीक है न ?" इतना कह कर मृणाल उन्मत्त-सी वहाँ से चली गई ।

भिल्लमराज ने अपनी स्त्री की ओर मुड़ कर कहा—"देवी कल विलास को सवारी देखने का अवसर मिलेगा ।"

"कैसे समझ लिया ?"

"मृणाल आये बिना न रहेगी"

विलास ने पूछा—"पिता जी, क्या मुंज कवि भी है ?"

"हाँ, वह कवियों का भी कवि है। लोग यही कहते हैं कि उसकी सेना के साथ भी कवि हैं।"

लक्ष्मी देवी का क्रोध अभी उतरा नहीं था। विलास ने पूछा—"माँ, कवियों को लोग क्यों धिक्कारते हैं ?"

"अपने बाप से पूछो। जब वह राजा थे, तब अनेक कवियों को उन्होंने भी आश्रय दिया था।"

महासामन्त ने एक ठंढी साँस लेते हुए कहा—"जा बेटी, तापसी तुम पर नाराज होंगी। मै तुझे दिखलाऊँगा, कल बहुत कवि आयेंगे।"

विलास ने भी एक ठंढी सांस ली और वहाँ से चली गई।

"देवी, जले को क्यों जलाती हो ?" महासामन्त ने अपनी स्त्री को लक्ष्य करके कहा।

लक्ष्मी समीप आई और पति के कंधे पर उसने हाथ रखा, फिर स्नेहपूर्वक बोली—"महाराज यह दिखलाने के लिए कि आप पृथ्वी वल्लभ के भी वल्लभ हो गये, तो भी पराधीन के पराधीन ही रहे ?"

"परन्तु इस तरह बार-बार कहने से क्या मेरी पराधीनता कम हो जायगी ?"

"नहीं, परन्तु महाराज मिट कर महासामन्त नहीं रह जाओगे। इस लड़की का विवाह हो जाय फिर आपको पराधीनता छोड़ ही देनी होगी।"

बहुत ही धीरे से लक्ष्मी देवी ने यह कहा और दोनों जने चुपचाप वहाँ से चल पड़े।

× × ×

मृणालवती स्नान करके ध्यान करने के लिये बैठी। परन्तु मन को एकाग्र करने में कुछ समय लगा। अपने आपको उसने धिक्कारा

कि आखिर वह स्वयं अन्य साधारण व्यक्तियों की तरह इस विजय से अधीर और अस्वस्थ क्यों हो गई। अंत में वह बड़े प्रयत्न से ध्यानमग्न हो पाई।

ध्यान कर चुकने के पश्चात् वह सोचने लगी कि सवारी देखने जाया जाय या नहीं? वह स्वयं जन-साधारण की तरह ऐसे अवसर पर उत्साहित होकर सवारी देखने निकले या नहीं? क्या उसे देखने की रुचि पैदा हो गई है? थोड़ी देर बाद उसे विश्वास हो गया कि उसे केवल सवारी देखने की इच्छा नहीं है।

तो क्या मुंज को देखने की इच्छा हो रही थी? उसके भाई के गौरव को नष्ट करने वाले शत्रु को, आर्यावर्त्त में बेजोड़ कहे जाने वाले नरेश को, देखने का मन सब को हो सकता है; परन्तु उसे किस लिये हो? उसके विरक्त हृदय को आज हो क्या गया है? वह हँस पड़ी। उसने इस प्रकार की क्षुद्र भावनाओं का परित्याग कभी से कर दिया था।

तो किसलिये वह देखने जायगी? तुरन्त प्रेरणा हुई, हेतु समझ में आ गया। वह स्वयम् इस देश के राजकाज की विधाता थी। वह ऐसे अवसर पर अदृष्ट रहे, अनुपस्थित रहे तो अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जायगी। यह बात ठीक है या नहीं, इस पर उसने दिमाग़ लड़ाया, और अन्त में इस निस्कर्ष पर पहुँची कि इसका कारण स्पष्ट एवं शुद्ध है। उसने सवारी देखने का निश्चय कर लिया।

४

पृथ्वी वल्लभ

स्वयं मृणालवती शोभायात्रा (सवारी) का समारोह देखने आयेगी और आनन्द-उत्सवों पर लगाये गये बन्धन ढीले कर दिये जायेंगे —जब यह बात नगर में फैल गई तब लोगों में एक प्रकार का उत्साह व्याप्त हो गया, अनेक वर्षों का दबा हुआ स्नेह छलछला उठा और समस्त आनंद मंगल जो लगभग लुप्त हो गये थे आज फिर दृष्टिगोचर हुए । दूसरे रोज प्रातःकाल मकानों की छतें और खिड़कियाँ हँसते-खेलते, आनन्द उत्सव मनाते, प्रसन्न मुख स्त्री-पुरुषों से भरी दिखाई पड़ने लगीं ।

राजप्रासाद के महलों की अटारी पर रंग-बिरंगे वस्त्रों से सुसज्जित स्त्रियाँ शोभायमान थीं । उन सब का मुख मंडल एक असंभावित आनन्द से दीप्त हो रहा था । दीर्घ काल के पश्चात् मनाया जाने वाला यह उत्सव देख कर उनका हृदय प्रफुल्लित हो रहा था । जब सवारी राजप्रासाद के महापथ पर आ गई तो एक दासी तुरन्त अन्दर गई । सब स्त्रियाँ शान्त होकर, वस्त्राभूषण ठीक करके, अन्दर के द्वार की ओर आतंकपूर्ण दृष्टि से देखने लगीं ।

मृणालवती स्वयं बाहर अटारी में आ बैठी । आज उसने वल्कल नहीं, श्वेत वस्त्र पहन रखे थे । धनुष की तरह लम्बी उसकी आँखें आज स्थिर और कठोर हो रही थीं । होठ दृढ़ता से दबे हुये थे । उसकी विद्रूप मुखाकृति इस कठोरता से और भी विद्रूप दीख रही थी । उसे देख कर निकट खड़ी हुई महिलाओं को रोमांच हो रहा था ।

जक्कला, लक्ष्मी और विलासवती मृणाल के पीछे बैठ गई थीं । विलास का भी परिधान आज श्वेत वस्त्रों का था । उसकी पतली देह

इन वस्त्रों में बढ़ती हुई चंद्रकला की भाँति मनोहर प्रतीत होती थी। उसका मुख-मंडल उमंग से भरा था। उसका रंग-ढंग देखने से यह प्रकट हो रहा था कि चिरकाल के बाद उस लड़की को आनन्द की अनुभूति का यह अवसर मिला है।

नगाड़े की गुरु-गंभीर ध्वनि और शहनाइयों के स्वर से आसमान गूँज उठा। सवारी आ पहुँची।

सब से पहले नगाड़े वाली ऊटनियाँ आईं और पीछे आई जय-जयकार करती हुई पैदल सेना। हाथ में भाले नचाते हुए आनन्दमग्न घुड़सवार आये, उसके बाद घूँघुरुओं की रुनझुन-रुनझुन ध्वनि वाले घोड़ों पर सवार।

उनके पीछे मालवा के खिन्न मुख योद्धागण आये। उनके हाथ पीठ से बँधे हुए थे, वस्त्र और कवच रक्त से सने हुए थे, शिर पर से शिरस्त्राण, हाथ के शस्त्र छीन लिये गये थे। कुछ ही महीनों पहले जिन बहादुरों ने इस नगरी को जीत लिया था वे ही आज बन्दी बना कर, सशस्त्र तैलंगी योद्धाओं के हास-परिहास की सामग्री बन कर तैलप की सेना की शोभा बढ़ा रहे थे।

इन सैनिकों की कतार के बाद शिरस्त्राण और कवच धारण किये हुए अश्वारूढ़ तैलंगी भट्टराज और उसके भी पीछे तैलपराज के छोटे-बड़े सामन्त हाथी पर चढ़े अनुक्रम से आने लगे। सामन्तों की श्रेणी समाप्त होते ही लोगों की उत्सुकता बढ़ गई, वे ध्यान से देखने लगे। सौ डेढ़ सौ शस्त्र-सज्जित बंदीजन पैदल चले आ रहे थे। मृणालवती की शुष्क प्रकृति ने कवियों को देश-निकाला दे दिया था, किन्तु भाट चारणों को राजकार्यों से एकदम अलग नहीं कर दिया था। यह वीर बंदीजन विजयोल्लास से हँसते हुए चल रहे थे।

उनके पीछे पचास-साठ बंदी सादे वस्त्रों में आये। वे सैनिक नहीं मालूम होते थे। उनकी आकृति सुकुमार थी। उनकी चाल धीमी थी।

जैसे ही ये लोग प्रासाद के सामने पहुँचे कि लक्ष्मीदेवी ने अपनी

लड़की का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा—"देखो बिलास वे कवि हैं। मृणालवती ने लड़की की बात सुन ली। उसने कठोरता से पूछा—"क्या कहा ?"

"बहन जी, ये मुंजराज के कवि हैं।"

"तुमसे किसने कहा ?"

"महासामन्त ने।"

मृणालवती ने तिरस्कार की मुद्रा में कहा, "युद्ध में भी पृथ्वी वल्लभ कवियों के बिना न रह सका ! क्या है इनका उपयोग ?"

वह लड़की उत्सुकता के मारे आँखें फाड़-फाड़ कर नये प्रकार के उन मनुष्यों को देखने लगी। कवियों के सम्बन्ध में उसने बहुत-सी बातें लुक-छिप कर सुन रखी थी। मृणाल उन्हें धिक्कार रही थी, इसलिये उस किशोरी की जिज्ञासा और भी बढ़ गई। कवियों को आज साक्षात देख कर बिलास को कुछ आनन्द हुआ, परन्तु इस आनन्द को प्रदर्शित करने का अवसर उसे नहीं मिला। और इस प्रकार भावातिरेक को दबाने का अभ्यास बिलासवती का अब काफी बढ़ चुका था।

सवारी आगे बढ़ी। कवियों के पीछे डंका और निशान के साथ तलवार और भाले लिये हुए दो सौ सैनिकों का दल आया। सबके बाद तैलपराज का महागज वेग से आता हुआ दिखाई पड़ा। उस पर तैलप और महासामन्त बैठे हुए थे। उन्हें देख कर जनता ने जयजयकार की और इस प्रकार अपने आनन्दातिरेक को व्यक्त किया। किन्तु राजमहल की अटारियों पर एकदम मौन छाया हुआ था।

राज पथ पर से लगातार जनसमूह का जयनाद सुनाई पड़ने लगा—'तैलप महाराज की जय'। सब ध्यानपूर्वक देखने लगे।

सैनिकगण तैलप के हाथी को चारों तरफ से घेर कर चल रहे थे। केवल एक गली-सा मार्ग अवशेष था और उस पर एक ही कैदी चल रहा था—लोग एकटक देख रहे थे क्या यही मालवे का मुंज !

ज्यों ही सैनिक मार्ग के दूसरे किनारे पर पहुँचे कि मृणाल ने

कहा—"देखो यह मुंज है।" उसके प्रकृतिस्थ हृदय में गर्व की एक लहर उठी; उसके मुख-मण्डल पर संतोष छा गया। मृणालवती का यह आनन्द देख कर सबमें साहस का संचार हुआ। जक्कला बोली—"आज शान्ति मिली। इस पापी ने कितने वर्षों तक चैन न लेने दी थी।"

मृणाल ने होंठ चबाते हुये कहा—"तैलप ने भी कहाँ इसे चैन से बैठने दिया! आज इसकी भी कीर्त्ति धूल में मिल गई।"

विलास ने पूछा—"बेचारे मुंजराज को इस प्रकार नंगे पैर क्यों घसीटा जा रहा है?"

लक्ष्मी ने कहा—"यह भाग्य का विधान है।"

"अनेक वीरों की मृत्यु का यह बदला है" जक्कला बोली।

मृणालवती ने कठोरता से कहा—"जक्कला, बदला-बदला नहीं। विजय सत्य की ही होती है। यह असत्य का अवतार था, अतएव पराजित हुआ।"

लक्ष्मीदेवी ने पूछा—"तो बहन, यह बड़ा पापी है?"

तापसी ने नज़र उठा कर देखा कि पूछने वाली की मुख-मुद्रा पर कहीं व्यंग का आभास तो नहीं है और फिर कहा—"हाँ, पापी है, महापापी! इस जैसा कलंकी आदमी भूमंडल भर में दूसरा नहीं होगा। इसका स्पर्श होने पर सात पीढ़ियाँ नरक में जायँगी।"

"ओह! ऐसी बात है! परन्तु देखो तो कैसा भला मालूम दे रहा है?"

धीरे-धीरे महल के नीचे वाले मैदान में मुंज आ पहुँचा। मृणालवती ने कठोरतापूर्वक कहना आरम्भ किया—"मनुष्य जैसा....." मृणाल आगे न बोल सकी, वाक्य अधूरा रह गया। वह स्थिर और मदालस नैनों से मुंज को निहारने लगी।

सैनिकों से घिरे हुए मैदान में क़ैदी अकेला खड़ा था, उसकी देह पर धोती और पीठ से बँधे हुए हाथों में हथकड़ी के सिवा और

कोई वस्त्राभूषण नहीं था। तो भी जो उसे देखता, वह देखता ही रह जाता था।

चारों ओर से उसको घेरे हुए सैनिक उसके विराट व्यक्तित्व के आगे क्षुद्र प्रतीत होते थे, बच्चों जैसे लगते थे। ऐसा मालूम होता था कि विजयी सेना मानो उसके ही यश का ढिंढोरा पीट रही है, उसकी ही शोभा बढ़ा रही है।

मुंज का शरीर सुघड़ और विशाल था गठन अपूर्व थी। उसका मुखमण्डल तेजस्वी और मोहक था। उसके बाल लम्बे-लम्बे और काले थे। शंकर के-से बड़े कंधों पर गंगाजल की भाँति वे मुंज के कंधों पर गिर कर उसकी मुखाकृति को और भी तेजोमय और आभावान बना रहे थे। उसकी भरी हुई लम्बी गर्दन ऐसी लगती थी मानों डसने के लिये उद्यत किसी साँप का पीछे की ओर खिंचा हुआ फन हो? मस्तक पीछे की ओर झुका हुआ मानों दर्प और उपेक्षा से वह जगत की अवहेलना कर रहा हो। हाथ पीछे जकड़े हुए थे इसलिए संगमर्मर तुल्य विशाल वक्षस्थल के चिकने और स्पष्ट स्नायु वाले अनेक भाग उभर आये थे मानों वे वक्षस्त्राण के अभाव की पूर्ति कर रहे हों, अपनी दुर्धर्षता और प्रताप प्रकट कर मानों जगत को डरा रहे हों। उसके पैर भी पुष्ट और सुगठित थे, मालूम ऐसा हो रहा था कि कमर से ऊपर वाला शरीर भार वहन करने के लिए दो मज़बूत खम्भे हैं, जो गतिशील होने के कारण धरती को कँपाते हुए प्रतीत होते थे।

उसका शरीर इतना सुडौल और मज़बूत था फिर भी पुष्ट नसों की उभार में ही उसका अनोखापन खतम नहीं हो गया था। वह देह जीवित मनुष्य की नहीं मालूम होती थी, मालूम ऐसा पड़ता था कि शारीरिक अपूर्वता का साकार स्वप्न है और उसके अंग-अंग से दिव्य भाव टपक रहा था।

वह धीरे-धीरे पैर उठाता था, मत्त गजराज की भाँति। उसके मुख पर क्षोभ और खेद की छाया ज़रा भी नहीं दिखलाई पड़ती थी। मृणालवती ने आँख गड़ा कर सब कुछ देखा, उसके क्रोध की सीमा

नहीं रही। वह पागल हो गई। मुंज के व्यक्तित्व से जो प्रताप फूट रहा था मृणाल को ऐसा लगा कि उसके समक्ष वह अधम है; उसके भाई तैलप की प्रभुता मुंज के आगे क्षुद्र है और यह विजय वास्तव में मुंज की ही विजय है ऐसा कुछ विचार आया। उसकी आँखों से चिनगारियाँ उड़ रही थी, जलती हुई दृष्टि को उसने शान्त किया, फड़फड़ाते हुए होठों को कस कर दबाया और उक्त विचारको हँसी-हँसी में उड़ा देने की इच्छा से वह एकटक मुंज को देखती ही रह गई।

महल के आगे सवारी जरा ठहर गई अटारी पर जहाँ मृणाल बैठी थी, ठीक उसके ही नीचे मुंज अपना एक पैर आगे बढ़ा कर दृढ़ता से खड़ा हो गया। प्रतीक्षा थी सवारी के आगे बढ़ने की, लेकिन लगा ऐसा जैसे सारी सेना को अपनी रुद्र गम्भीर दृष्टि से वह क्षुद्रता का अनुभव करा रहा है।

विलास से अब न रहा गया वह बोली – "बहन जी, कैसा अद्भुत पुरुष है!"

विलास की यह धीमी आवाज भी नीचे पहुँच गई। आँखों पर लहराते हुए लम्बे-लम्बे केश गुच्छकों को उछाल कर, शिर पर पीछे की ओर डालते हुए मुंज ने ऊपर देखा. उसकी दृष्टि अटारी पर खड़ी हुई सुन्दरियों में जाकर उलझ गई। सारी स्त्रियाँ स्तब्ध हो गईं। कई ने तो घबड़ा कर छज्जे के कटहरे या पिछली दीवार पर हाथ रख लिये।

मुंज ने एक सर्वग्राही दृष्टि विलास पर डाली। फिर प्रत्येक सुन्दरी की ओर देखा और अन्त में मृणाल पर अपनी नज़र ठहरा कर वह हँस पड़ा। नील-निर्मेघ आकाश में सहसा उदित सूर्य की भाँति सुन्दर मुंज का मुखमण्डल देख कर मृणाल सारी सुध बुध भूल गई केवल एक-टक देखती रही।

तापसी को सिर्फ़ इतना ही भान रहा कि उस मुखमण्डल पर एक भी रेखा अपूर्ण नहीं थी, एक भी भाव का अभाव न था। विशाल भाल की स्फटिक-सी निर्मलता, और तेजस्वी नैनों से झरती

हुई मधुरता, सुन्दर मनमोहक होठों पर मुस्कराती मोहकता और मुखाकृति पर नाचती हुई विजय की स्पष्ट मुद्रा ही मृणाल ने देखी। उस स्वर्गिक मुख पर काव्य की मधुरिमा थी। उस हास्य में कामदेव का अविकल शर-संधान था। सब स्त्रियाँ मादक आवेश से विभोर हो गईं। मृणाल भी क्षण भर के लिए स्तब्ध रह गई! सवारी आगे बढ़ी। मुंज ने नजर उठा कर ऊपर ताका और मुसकान का एक तीर छोड़ कर आगे बढ़ गया। तैलपराज की ओर किसी का ध्यान नहीं था। महासामन्त की ओर किसी ने दृष्टि तक नहीं उठाई। निगाह नीची करके दूर जाते हुए पृथ्वी वल्लभ की पीठ पर ही सब की आँखें गड़ी रहीं।

सब से पहले, अटारी पर मृणाल ही उठ खड़ी हुई। सब के खोये हुए हृदय फिर वापस आ गये। सभी महिलाये मृणालवती की प्रकृति को भूल कर मुंज की प्रशंसा करने लगीं। न जाने किस कारण से मृणाल के मुखमण्डल पर भयंकर कठोरता छा रही थी।

"बहन जी, जो बात महासामन्त कहते थे वह ठीक ही निकली। यथार्थ में वह पृथ्वी वल्लभ है" लक्ष्मीदेवी ने कहा।

मृणाल क्षण भर के लिये अचंचल आँखों से लक्ष्मी को निहारती रही। फिर तुरन्त ही परुष स्वर में बोली—"लक्ष्मी, सच्चा 'पृथ्वी वल्लभ' तो तैलप ही है।"

"किन्तु, वाह, क्या रूप पाया है!" विलास के मुँह से निकला।

मृणाल रुष्ट हो उठी, जोर से विलास का कान ऐंठती हुई बोली—"इतने ही में सब भूल गई? क्षण भर में ही। मैंने पहले ही कहा था ऐसी जगह बालकों को न ले आना चाहिये। और कुछ न देखोगी, केवल रूप देख कर ही इस प्रकार पगली हो जाओगी तो आखिर तुम्हारा कल्याण कैसे होगा? देखो....मुझे क्यों नहीं कुछ होता? जाओ, सब जाओ। तुम्हारे मन में यदि इस आनन्द का थोड़ा-सा भी विकार आ गया हो तो जाओ प्रायश्चित्त करो।

सिंहनी की गर्जना पूरी हुई और त्रस्त आकुल हरिणियाँ तुरंत भाग गईं।

५

वरदान

मृणालवती वहाँ से दृढ़तापूर्वक चली गई, उसको इस समय अपने वैराग्य की अखण्डता का ध्यान आया। मालवेश्वर में रूप और तेज की कमी न थी इससे साधारण प्राणी मोह में आ सकता है। परन्तु वह तो जैसी की तैसी ही अचल, स्वस्थ और सात्त्विक है।

फिर भी उसके अन्तर में किसी ने प्रश्न किया—"मृणाल क्षण भर के लिये तू क्यों स्तब्ध हो गई थी?"

विस्मित होकर मन ही मन उसने अपना समाधान किया—मैं? मैं तो केवल अपने भाई के दुश्मन को देख रही थी। मेरे मन में कहाँ कोई विकार उत्पन्न हुआ था। मैं तो केवल यही परख रही थी कि आदमी अधमता के गड्ढे में पहुँच कर कैसा मालूम देता है। स्तब्ध! मैं स्तब्ध! यह तो एक मात्र एकाग्रता थी। विवेक भ्रष्ट होने पर भी आदमी वैसा हो सकता है।

इस प्रकार के ताने-बाने बुनती हुई वह अपनी पूर्णता के गर्व से फूल उठी।

नगाड़े की गड़गड़ाहट से उसे ज्ञात हुआ कि सवारी उतर गई। वह धीरे-धीरे राजमहल के द्वार की ओर चली। इस अनुपम विजय-गर्व की मादकता उस पर से उतर चुकी थी। उसको ऐसा मालूम हो रहा था कि मानो वह बहुत कुछ प्रकृतिस्थ हो गई है। उसे संतोष हुआ, यह उसके वैराग्य की स्थिरता का प्रमाण था; किन्तु क्या उसके हृदय में एक अप्रकट खिन्नता चिकोटी नहीं काट रही थी? पर, कृत्रिम मुस्कान मुसकरा कर उसने यह विचार ही उड़ा दिया। वह सोचने लगी—तीस वर्ष के निरंतर अभ्यास से जो हृदय निर्विकार हो चुका है उसमें खिन्नता या चंचलता!

जब वह द्वार के आगे पहुँची तो वहाँ एकत्रित राजन्य समुदाय पर शांति-सी छा गई। सभी मौन थे, सभी तैलंगण की भाग्य-विधाता की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगे। वह स्वस्थ, कठोर, सरल किन्तु भयावह लगती थी। उसकी आँखों की पलक और मुख पर के भाव सभी को ईश्वरेच्छा के प्रतीक प्रतीत होते थे।

मृणाल आई। सवारी उतरने का विधान पूरा कर भाई ने आकर उसे साष्टांग प्रणाम किया। और उसके चरणों की धूल माथे लगाई।

तैलप का रूप और शरीर का गठन मृणाल के समान ही था। सिर्फ़ चेचक के दाग उसके चेहरे पर नहीं थे। शरीर की एक-एक रेखा पौरुष-पूर्ण, प्रकट और मृदुताविहीन थी। आँखें ज़रा छोटी और धसी हुई थीं, मृणाल के मुख पर जरा कठोरता थी और तैलप के मुँह पर क्रूरता।

तैलप हिसाबी, कठोर-हृदय और बहुत ही चुस्त चालाक था। मृणाल की शिक्षा के प्रभाव से उसमें सरलता का लेश भी नहीं रह गया था। जिसने उसे माता की तरह पाला-पोसा, पिता की तरह पढ़ाया-लिखाया, शिक्षित किया और स्वयम् अधिष्ठात्री देवी बनी रह कर उसे चक्रवर्त्ती परमभट्टारक महाराजाधिराज बनाया, केवल उस बहन के लिये तैलप के हृदय में अगाध स्नेह और अनन्त सम्मान था। मृणाल की विवेक-शक्ति और पवित्रता में तैलप को अटल श्रद्धा थी।

प्रणाम करने के बाद तैलप उठ खड़ा हुआ तो मृणाल ने आशीर्वाद दिया—"रणरंग भीम! तुम सौ वर्ष जियो और वास्तव में पृथ्वी वल्लभ बनो।"

"आपका अनुग्रह बना रहे" तैलप ने नम्रता से कहा और पीछे खड़े हुये भिल्लमराज की ओर देखा, "बहन, महासामन्त को भी आशीष दो, इनके ही प्रताप से आज मैं जीवित हूँ और मुंज को बन्दी बना पाया हूँ।" किंचित मधुर हास्य के साथ मृणाल ने कहा—"यह बात महासामन्त ने मुझसे बहुत पहले ही कह दी है। इनको तो सदा

ही मेरा आशीर्वाद है। यह दीर्घजीवी हों और तुम्हारे सामन्तों में प्रधान पद का उपभोग करें।"

भिल्लम ने होंठ चबाते हुये, झुक कर मृणाल के पैर छुये।

मृणाल ने कहा—"अच्छा चलो, भाई! कवच उतार डालो और सुस्ता लो।" इतना कह कर वह तैलप को अन्दर ले चली।

तैलप ने मुड़ कर कहा—"महासामन्त तुम भी चलो ज़रा काम है।"

भाई-बहन आगे-आगे और भिल्लमराज पीछे, इस प्रकार तीनों मौन धारण किये हुये अन्तःपुर की ओर गये। लोगों का समूह धीरे-धीरे बिखर गया।

अन्तःपुर के एक भाग में जक्कला देवी पति की प्रतीक्षा कर रही थी, वह प्रौढ़ा थी, फिर भी मृणाल की दया से नवोढ़ा-सी बनी हुई थी, केवल नेत्रों से आनन्द और उत्साह प्रकट कर रहा थी। तैलप अंदर आया, कवच और आयुधों को उसने एक-एक करके उतारा, रानी चुपचाप उन्हें यथास्थान रख आई फिर उसने अपने स्वामी का सत्कार किया। तैलप निपट कर वहाँ आया जहाँ तकिये के सहारे मृणाल बैठी थी, वह भी उसके समीप ही बैठ गया। रानी ने आकुल दृष्टि से वहाँ ठहर जाने की आज्ञा चाही, पर न मिली। उसे जाना पड़ा।

"बताओ बहन अब मुंज का क्या किया जाय?"

मृणाल जवाब देने से पहले पल भर कठोरता से भूमि की ओर देखती रही, उसका रंग-ढंग कठोर लग रहा था। इतने में मुंज का प्रभावशाली और विकसित मुखमण्डल चित्र की तरह उसकी निगाहों में नाच उठा।

दूसरे ही क्षण दाँत पीसते हुये मृणाल ने कहा—"इसको? इस पापी को कड़ा दण्ड मिलना चाहिये।"

तैलप की धँसी हुई क्रूर आँखों में विष व्याप्त हो गया। उसने दृढ़तापूर्वक कहा,—"तो कल उसका वध कराया जाय न?" मृणाल के नेत्र आग बरसा रहे थे वह गुर्रा उठी, "मुंज कोई मामूली दुश्मन नहीं।

उसने तुम्हें सताने में क्या कसर उठा रखी ? सबके देखते-देखते तुम्हारे देश की स्त्रियों का सुहाग लूटा। उज्जयिनी में अनेक बार तुमसे पैर धुलवाये; तुम्हारी और मेरी कीर्त्ति को कलंकित करने के लिए स्वयम् भी उसने अनेक काव्य रचे और दूसरों से रचवाये। उसे तो दुख दे-दे कर मारना चाहिये, तिल-तिल करके जलाना चाहिये। तभी बदला चुकेगा।

"तो क्या किया जाय बहन ?" तैलप ने कुछ सोचते हुये पूछा। "तुम्हारा क्या विचार है भिल्लमराज ?" मृणाल ने पूछा।

महासामन्त ने स्वाभाविक सरलता से संक्षेप में कहा—"बहन, कैद में डाले हुये राजा का बध करने में मुझे कोई बड़ी बात तो नहीं दीखती। उसे दुख दो, कष्ट दो, परन्तु उसका शिर मत छुवो।"

तैलप तिरस्कारपूर्ण भावना से बोला—"महासामन्त, बध तो बध ही है, वह चाहे युद्ध में हो चाहे शूला पर। मुझे दोनों में कोई अन्तर नहीं दीखता।"

मृणाल दोनों की बात सुन रही थी। अपने हृदय को भयंकर भावनाओं पर परदा डालते हुये बड़ा शान्ति से उसने कहा,—"ना भाई मुझे तो महासामन्त की ही बात जँचती है। बध करने से लाभ ? पहाड़ जैसी दानवी देह क्षीण हो जाय, आँखे निस्तेज हो जायें, मुँह पर की हँसी उड़ जाय, अंगों पर दीनता छा जाय, तुम्हारी और मेरी कृपा के लिये अनुनय-विनय करते-करते घिस जाय, उसकी जीभ गल जाय, उसका गर्व चूर-चूर हो जाय तभी बदला चुकेगा। हम सोलह-सोलह बार हारे हैं, उस आततायी को अब ऐसे ही छोड़ दें ?"

तैलपराज की मुखाकृति मानसिक सन्तोष से निखर उठी। उसने कहा—"ठीक है बहन, लेकिन लोगों का कहना है कि मुंज का गर्व दलित करना आसान काम नहीं।"

मृणाल ने उपेक्षा के भाव से कहा—"अरे यह सब कहने की बातें हैं। मैं देख लूंगी कि उसका गर्व अखंडित कैसे रहता है।"

"तुम !" तैलप ने चौंक कर पूछा।

"हाँ, हाँ, मैं। अवन्तिका में बैठे-बैठे उसने मेरे लिये क्या कुछ कम कहा और कहलवाया है? अब मैं देखूँगा कि हमारे सामने वह क्या कहने का साहस करता है। उसे रखा कहाँ गया है?"

"महल के तहखाने में।"

"ठीक। मैं संध्या समय उससे मिलूँगी।"

"कार्त्तवीर्य को भेज कर मैंने उसके सामंतों से पुछवाया है कि उन्हें हमारी अधीनता स्वीकार है या नहीं? यदि अस्वीकार करेंगे तो कल उनका बध करा दूँगा। दूसरे योद्धाओं को भी कल काम तमाम कर दूँगा।"

"ठीक है।"

तैलप ने महासामन्त की ओर आकर्षिक हो कर कहा—"मित्र, इस समय बहन भी बैठी हुई हैं। बताओ क्या वरदान चाहते हो? जो चाहो, इस समय मिल सकता है, तुम्हारी सेवाओं के बदले जो भी दिया जाय, थोड़ा होगा।"

भिल्लम ने आहिस्ते से कहा, "महाराज, यह तो आपकी सहृदयता है; परन्तु मैंने जो कुछ किया, बदले के लिये नहीं किया।"

"नहीं महासामन्त, तुम्हारा अधिकार है। बोलो, क्या अभीष्ट है।" निश्चित स्वर में मृणाल बोली।

भिल्लम ने मृणाल की ओर देखते हुये कहा, "बहन, और जो मैं माँगू कदाचित आपको वह देना भला न लगे, तो मेरी भी बात जाय और आपकी भी।"

"तुम्हारे विवेक में और अपने भाई की उदारता में मुझे श्रद्धा है। तुम्हारी बात टाली नहीं जायगी।"

तैलप ने मीठी हँसी हँसते हुये कहा, "बोलो महासामन्त बोलो, संकोच मत करो। तुम्हारी मैत्री से अधिक प्रिय मुझे कोई वस्तु नहीं है।"

भिल्लम क्षण भर के लिये रुक गया और भयंकर प्रकृति के उन दोनों भाई-बहनों को देखता रहा। फिर धीरे-धीरे वह कहने लगा—

"मेरे हृदय में एक ही आकांक्षा है महाराज, एक ही अभिलाषा है महाराज, और उसे आप जानते ही हैं।"

"सो क्या ?"

"कुमार सत्याश्रय के साथ विलासवती का विवाह।"

भिल्लम की बात सुन कर मृणाल हँसने लगी—"महासामन्त, यह भी तुमने खूब कहा। इस ज़रा-सी बात के लिये भी इतने विचार की आवश्यकता पड़ी। यह वर तो कभी का मिल चुका है।"

"परन्तु मैं चाहता हूँ जहाँ तक हो, शीघ्र ही यह काम हो जाय।"

"मेरा भी यही निश्चय है।"

"तो कब होगा ?"

"आगामी मास में, मैंने कभी से मुहूर्त्त ठीक करवा रखा है और अब इसी विजय महोत्सव के साथ विवाह हो जायगा।"

मृणाल की बात समाप्त होते ही तैलप हँसा, "महासामन्त, और कुछ माँगो। तुम तो मुझे लज्जित कर रहे हो। क्या मेरे पास कोई ऐसी वस्तु नहीं, जिससे मैं तुम्हें खुश कर सकूँ, सुखमय बना सकूँ ?"

भिल्लम असमंजस में पड़ गया। तैलप की नस-नस को वह पहचानता था। उसे पता था कि तैलप बड़ाई चाहता है। वरदान से मिलने वाली महिमा का भूखा है। भिल्लम जैसे व्यक्ति को रिझा कर अपना असंतोष मिटाना चाहता है। परन्तु भिल्लम को यह भली भाँति ज्ञात था कि यदि वह तैलपराज की इच्छा के प्रतिकूल कोई वर माँगेगा, वही नहीं मिलेगा; दूसरे प्रकार का वर यदि मिल भी गया, तो तुरन्त ही छीन लिया जायगा। स्यूनराज की बड़ी ही इच्छा थी कि वह लक्ष्मीदेवी को ले कर अपने देश जाय, परन्तु वह इस इच्छा को व्यक्त नहीं कर सकता था। वरदान में यह बात मिलेगी, उसे इस बात की आशा नहीं थी। इसीलिए उसने यह वर नहीं माँगा। अभी भी उस वीरात्मा का स्वाभिमान बिल्कुल मर नहीं गया था, उसकी धारणा थी कि माँगने पर कोई चीज़ न मिले तो यह बड़े अपमान की बात है, इसीलिए ऐसे घोर

अपमान की अपेक्षा पराधीनता का स्थूल दुख सहना उसे अच्छा लगा। सहसा उसे एक बात याद आ गई। जिस समय वह मुंज को पछाड़ कर उसकी छाती पर चढ़ बैठा था और ज़बर्दस्ती उसके हथियार छीन लिए थे, उसी समय मुंज ने भिल्लम के कान में कुछ कहा था। यही कहा था कि वीरवर, मेरा कुछ भी हो, इसकी पर्वाह नहीं; परन्तु मेरे कवियों को कष्ट न होने पाये, विजय के उत्साह में महासामन्त इन शब्दों को भूल गया था। इस समय उसे वे याद हो आये।

इन शब्दों को स्मरण करके मुंज के प्रति उसका हृदय सम्मानपूर्ण हो उठा। पराजित हो कर पृथ्वी पर पड़े रहने के समय यमराज की ललकार से भ्रांत-मस्तिष्क हो जाने के समय भी उस महामानव ने अपने सहचरों को स्मरण किया। कहाँ वह महान् आत्मा पृथ्वी वल्लभ और कहाँ यह उसका विजेता! यह सब याद आते ही भिल्लम दृढ़तापूर्वक बोला, "महाराज, आपकी छत्रछाया के नीचे मुझे किस बात की कमी है! परन्तु एक बात चाहता हूँ, यदि आज्ञा हो तो ···"

मृणाल ने तीखी निगाह से भिल्लम की ओर देखा, "क्या है, कह डालो, क्या चाहते हो?"

उतावली से भिल्लम ने कह डाला, "मालवा के कवियों का जीवन-दान।"

तैलप हँस पड़ा। मृणाल की भौंहें सिकुड़ गईं उसने तिरस्कार-पूर्वक कहा, "वाह भिल्लमराज, माँगा भी तो क्या माँगा?"

"बहन, मेरे पूर्वज कविगण त्राता कहलाते थे, मैं तो ऐसे यश का भागी होने से रहा। केवल एक यही अवसर मिला है" भिल्लम ने विनीत स्वर में कहा।

मृणाल बोली, "ऐसे पापियों से धरती का भार बढ़ाओगे! इससे लाभ?"

तैलप ने भी मृणाल का समर्थन करते हुये कहा, "महासामन्त,

माँगने के योग्य और कई वस्तुयें हैं, क्यों चाहते हो ऐसे जन्तुओं का जीवन-दान ?"

दृढ़ संकल्प भिल्लमराज के होंठ मुँद गये, पल भर के बाद वह फिर बोला, "महाराज, यदि मेरी यह याचना आपको स्वीकार नहीं हो तो कोई बात नहीं आप प्रभु हैं। आपने कहा और मैंने माँगा; नहीं तो मैं कुछ भी नहीं माँगना चाहता था।"

"तो उन्हें छुड़ा कर क्या करोगे ?"

"जो आप कहेंगे, मुझे उनसे कोई खास काम नहीं है।"

"ठीक है, उन सबसे मुंज की बदनामी के गाने गवाये जायँगे।"

"जो आपकी इच्छा हो, कीजियेगा। मैं तो केवल यह चाहता हूँ कि किसी तरह वे जीवित रहें।"

तैलप ने मृणाल की ओर देखते हुए कहा, "अच्छा, जाओ, उन्हें जीवित भर रहने दिया जायगा। बस न ? परन्तु उन्हें उन्मुक्त हो कर घूमने-फिरने न दिया जाय।"

"जो आज्ञा। उन्हें मैं अपने महल के तलगर्भ में रखूँगा।"

भिल्लमराज को यह उचित प्रतीत हुआ कि अब यहाँ बैठना ठीक नहीं। उसने उठते हुए कहा, "तो महाराज मुझे अभी आज्ञा मिले।"

"हाँ, जाओ। दरबार में आ पहुँचना।"

"बहुत अच्छा, जो आज्ञा।"

महासामन्त चला गया। उसके चले जाने पर मृणाल ने तैलप की ओर देखा और कहा, "मुझे इस आदमी पर विश्वास नहीं होता।"

"आदमी तो बड़ा साफ़ है, लेकिन इसकी स्त्री इसे शान्त हो कर नहीं बैठने देती। इसीलिये तो मैंने वर माँगने के लिए कहा था" तैलप बोला।

किसी के पैरों की आहट सुन कर मृणाल ने पूछा, "कौन ? अकलंक है क्या ?"

तैलप द्वार की ओर देखने लगा। एक युवक ने प्रवेश किया। उसकी उमर बीस-बाईस के क़रीब होगी। मुखाकृति बिल्कुल तैलप की-सी थी। उसके सरल-सबल शरीर पर क़ीमती कवच शोभायमान था और शिर पर एक छोटा-सा मुकुट था, जिससे उसका मनोहर मुख गौरव-पूर्ण लगता था। उसने आ कर मृणाल को दण्डवत प्रणाम किया और तैलप को नमस्कार करके पल्थी मार कर बैठ गया।

"बेटा, सत्याश्रय क्या कर आये ?"

सत्याश्रय ने गंभीर स्वर में कहा, "पिता जी, महल के तलगृह में मुंज को छोड़ आया हूँ। और पहरे पर सामन्त भीमरस को नियुक्त कर दिया है।"

"बहुत अच्छा किया।"

"और काठ का एक बड़ा पिंजरा बनाने का आदेश भी कर आया हूँ।"

"शाबाश सत्याश्रय, शाबाश ! तुम्हारा विवाह निश्चित हो गया है।"

"जी।"

संकोच के मारे सत्याश्रय ने शिर झुका लिया।

मृणाल ने सत्याश्रय के मुँह की ओर देखते हुये कहा, "विजयोत्सव के साथ यह उत्सव भी अच्छा ही रहेगा। जाओ, आराम करो।"

"जो आज्ञा" सत्याश्रय ने शिर झुकाया और चल दिया।

जाते हुए सत्याश्रय को देख कर मृणाल ने कहा, "देखना भला, किसी समय विलास से मिल आना।"

उत्तर में सत्याश्रय ने फिर एक बार शिर झुका दिया और प्रस्थान किया।

६

रसनिधि

राजा ने वचन तो दे दिया, पर भिल्लम को भय था कि कहीं वह अपने वचन को लौटा न ले। यही सोच कर वह सीधे वहाँ पहुँचा, जहाँ मालवा के कविगण बन्दी बना कर रखे गये थे।

भट्टराज पहरे पर था। उसने राजा का वरदान सुना तो बड़ा विस्मित हुआ। महासामंत के कहने से कारागार का फाटक खोल दिया।

महासामंत को देख कर वहाँ बैठे हुये पुरुषों में खलबली मच गई।

भिल्लमराज ने विनम्र हो कर कहा—"कविगण, मैं क्षमा चाहता हूँ। एक प्रार्थना है। आतिथ्य को स्वीकार कीजियेगा।"

एक सुकुमार सुन्दर और मझोले क़द का युवक सामने आया और मुस्कराते हुये बोला, "क्या आप यमराज हैं?"

उस युवक की सुन्दरता और तेजस्विता ऐसी थी कि महासामंत निहारता ही रह गया।

क्षण भर मौन रह कर उसने कहा, "मैं? नहीं, क्यों?"

एक दूसरे तरुण ने आगे आ कर कहा, "मृणालवती को इस सूनी नगरी में यमराज के सिवा कौन होगा जो हमारा आतिथ्य कर सके?"

पहले युवक ने कहा, 'धनंजय! यह स्वयं यमराज नहीं हैं। उनके प्रधान दूत, स्यून देश के राजा भिल्लम।

भिल्लम हँस पड़ा—"नहीं, मैं केवल महासामंत हूँ। यमदूत भी नहीं हूँ। मैं तो तुम्हें इस जीवित नरक से बचाने आया हूँ।"

धनंजय* ने कहा, "पृथ्वीवल्लभ से हीन और निस्तेज हो गई है। कहीं जाने को स्थान नहीं रह गया है।"

---

*'दशरूपक' (संस्कृत में नाट्यशास्त्र का एक ग्रंथ) का रचयिता

"नहीं, महाराज ने तो आप लोगों को जीवन-दान दे दिया है। आप सब कृपया मेरे यहाँ चलें।"

यह सुनते ही सब विस्मित हो गये। और ज़रा होश में आ कर भिल्लम को घेर कर खड़े हो गये।

"आप ही का नाम धनंजय है न?"

"जी।"

भिल्लम ने उस सुन्दर युवक की ओर देख कर पुनः पूछा—"और आपका नाम?"

"मेरा?" उस युवक ने हिचकते हुये कहा।

धनंजय बोला, "इनका नाम रसनिधि है और यह पद्मगुप्त···"

"हाँ, मेरा नाम रसनिधि है।"

रसनिधि भिल्लम के साथ चला, और सब उसके पीछे हो लिये।

रास्ते में चलते हुये महासामंत ने रसनिधि की ओर देखा और समझ लिया कि उसकी सुकुमारता को देखते हुये उसका शरीर अपेक्षाकृत अधिक बलवान मालूम हो रहा है। भिल्लम को शूर-वीरों के परखने की टेव पड़ गई थी। इसलिए उसको लगा कि यह पुरुष कवच से बहुत शोभायमान हो सकता है। ऐसा विचार कर वह मन ही मन हँस पड़ा। अपने आपसे उसने कहा, "कवि को कवच और युद्ध से क्या मतलब?"

महासामन्त चुपचाप राजप्रासाद के समीपवर्त्ती अपने महल में आ पहुँचा। कविजनों के आतिथ्य की तैयारी के लिए उसने अपने सेवकों को आदेश दिया।

धनंजय को लक्ष्य करके महासामंत ने कहा, "कविराज! आप कुछ कष्ट करेंगे?"

"मुझे? कहिये, क्या आज्ञा है?"

"बहुत दिनों से मेरी पत्नी और पुत्रों ने कवियों के दर्शन नहीं किये। क्या आप पधारेंगे ?"

धनंजय ने उपेक्षा-भाव से कहा, "जिस देश में कवि दुर्लभ हों, वहाँ रूप में सौन्दर्य नहीं रह जाता। राजा में स्थिरता नहीं रह जाती और स्त्रियों की स्वाभाविक आर्द्रता नष्ट हो जाती है। यह कोई अनोखी बात नहीं है।"

"कविवर आप भी पधारेंगे ?" महासामंत ने रसनिधि को लक्ष्य करके कहा।

"मैं ?" संकोचपूर्वक कवि ने जिज्ञासा प्रकट की।

"हाँ, आप। इसमें संकोच की कौन-सी बात रखी है ?"

धनंजय ने बड़े ध्यान से रसनिधि की ओर देखा ?

"हाँ, रसनिधि, तुम भी चलो।....चलिये स्यूनराज।"

तीनों अंतःपुर की ओर चल दिए।

भिल्लमराज ने आज अपने पूर्वजों की उपाधि 'कविकुलत्राता' की रक्षा की थी, बहुत दिनों के बाद ऐसे सांस्कृतिक मनुष्यों का सत्संग मिला था। भिल्लमराज का हृदय आनन्द और गर्व से फूल उठा।

लक्ष्मीदेवी अभी राजमहल से लौटी नहीं थीं, और विलास श्री शंकर के मंदिर में। महासामन्त ने विलास को बुलाने को एक दूत भेज दिया। धनंजय और रसनिधि को साथ लिए स्वयं वह अन्तःपुर के पीछे वाली वाटिका में चले गए। वहाँ एक विशालकाय पीपल का पेड़ था। उसी के नीचे तीनों बैठे और बातचीत चलने लगी।

थोड़ी देर बाद विलास का स्वर सुनाई पड़ा, "पिता जी ..."

"कौन, बेटी विलास ?"

विलास जब निकट आई तो भिल्लमराज ने कहा, "तुम कवियों को देखना चाहती थीं न बेटी ? देखो यह हैं कवि।

विलास ने दोनों कवियों की ओर ध्यानपूर्वक देखा और सिहर कर खड़ी रह गई।

"यह कविराज धनंजय हैं। इनकी ख्याति तो हमारे स्यून देश तक पहुँची थी।"

विलास ने शिर झुका कर नमस्कार किया।

धनंजय ने आडंबरपूर्ण स्वर में कहा, "पुत्री! राघव जैसे नरेन्द्र की अर्धाङ्गिनी बन कर, सूर्य जैसे तेजस्वी पुत्रों की माता बनो।"

"और, आप कवि रसनिधि हैं।"

संकोच से शिर कुछ नीचा करके वह खड़ी रही, एक बार जिज्ञासा-पूर्ण अधखुली आँखों से उसने रसनिधि की ओर देखा। उसको कवि का मुँह कुछ विचित्र-सा लगा। वह कौन-सी विचित्रता थी और विचित्रता का उस पर क्या प्रभाव पड़ा, यह सब कुछ विलास समझ नहीं सकी।

रसनिधि ने मुस्कराते हुये कहा, "भगवती, मैं क्या आशीर्वाद दूँ, सुधाकर को वरण करना और सुधा का आस्वादन करके अकल्पित आनन्द का उपभोग करना।"

विलासवती इस आशीर्वाद का कोई स्पष्ट तात्पर्य न समझ सकी। परन्तु, महासामंत खिलखिला कर हँस पड़ा, "कविवर, यह अवंतिका नहीं है, मान्यखेट है।"

"यह कविराज धनंजय हैं। इनकी ख्याति तो हमारे स्यून देश तक
पहुँची थी।"

पटरानी बनेगी। इसीलिए उनके योग्य शिक्षा इसको मिल रही है! ठीक है न विलास?"

विलास ने मुस्करा दिया। दोनों कवि उसकी ओर करुण-दृष्टि से देखने लगे।

धनंजय ने पूछा, "जब हृदय के निर्झर सूख जायँगे, क्या तब पटरानी का पद प्राप्त करेगी।"

"बहन मृणाल की ऐसी ही इच्छा है। आओ, बैठो विलास, मैंने इन कवियों को छुड़वा दिया है, अब ये अपने ही यहाँ रहेंगे।" विलास बाप के पास आ कर खड़ी हो गई; चुपचाप तीनों को निहारने लगी।

विलास को एक अद्भुत अनुभव हुआ। कवियों के वस्त्र विचित्र थे, उनकी रीति-नीति स्वच्छंद और विनम्र था; उनकी बातचीत में गम्भीरता और संयम—जिन गुणों का उनको भक्त बनाने में समर्थ हुई थी उनका अभाव था, उनके मुँह पर कठोरता और क्रोध का नाम न था। इससे उस किशोरी को वह वातावरण इन सबके लिए अस्वाभाविक प्रतीत हुआ। हृदय में किसी दुःखद आघात का अनुभव हुआ। परन्तु वह अदृश्य आघात ऐसा आकर्षक एवं मनमोहक प्रतीत हुआ कि उसे वहाँ से हटने की इच्छा नहीं हुई।

रसनिधि ने पूछा, "तो आपके यहाँ से कवियों को निर्वासित कर दिया गया है? मैं तो इसे अफ़वाह मात्र ही समझ रहा था।"

भिल्लम ने कहा, "यहाँ जो न हो सो थोड़ा है।"

"कविता नहीं, रस नहीं, आनन्द नहीं; फिर यहाँ शेष ही क्या रह गया है?"

"बोलो विलास, उत्तर दो।"

किशोरी ने धीरे से दृष्टि उठा कर रसनिधि की ओर देखा फिर निगाह नीची करके कहा, "त्याग, शांति।"

"कितने आदमियों ने त्याग और शांति का यथार्थ अनुभव किया है?"

भिल्लम ने हँसते हुये कहा, "हम सब तो देवता हो गये हैं।"

"देवता भी तो आनन्द-स्वरूप हैं; किन्तु तुम तो पाषाण होने का प्रयास कर रहे हो।"

"यदि इस समय इसकी माँ यहाँ मौजूद होतीं तो तुम्हारी इस बात से उन्हें बड़ा आनन्द मिलता।"

विलास ने तोते की तरह रटा हुआ सूत्र कहा, "संसार में सब कुछ चंचल है, केवल एक शांति ही निश्चल है।"

"नहीं, वह भी चंचल है, निश्चल तो केवल आनन्द है।"

विलास के मुख पर तिरस्कार का भाव छा गया। उसे हँसी आ गई वह बोली, "बिना शांति के आनन्द भला मिलेगा ही कैसे?"

"वह तो क्षणिक है।"

"कौन कहता है?" यदि रसिकता हो तो शाश्वत सुख प्राप्त हो सकता है।

लक्ष्मीदेवी अभी तक नहीं आई थीं। भिल्लम का ध्यान उसकी ओर लगा हुआ था। कवियों की बातचीत में उसे आनन्द नहीं आ रहा था, इसलिए वह उठ खड़ा हुआ। उसने कहा, "आप लोग बातें कीजिये मैं अभी आया। विलास की माँ अभी तक नहीं आई हैं।"

भिल्लम चला गया। वहीं पास में एक सरोवर था, उसकी ओर दृष्टिपात करके धनंजय भी उठ खड़ा हुआ।

७

रसिकता

विलास ने पूछा, "रसिकता किसे कहते हैं ?"

रसनिधि ने आँखें फाड़ कर कहा, "तुम्हें पता नहीं है ?"

"नहीं।"

"तुमने काव्य सुने हैं ?"

विलास ने हँसते हुये कहा, "आपके भतृहरि जी का वैराग्य शतक सुना है।"

"और, शृङ्गार शतक ?"

विलास ने कठोर दृष्टि से ऊपर देखा और कहा, "वह तो पापाचारियों के लिये है।"

रसनिधि हँसा, "कभी नाटक-वाटक देखा है।"

"जब बहुत छोटी थी, तब अपने देश में देखा था, अब याद नहीं।"

"किसी रात में चन्द्रमा की ज्योत्स्ना में पड़े-पड़े गाया है ?"

"नहीं। चन्द्रमा की चाँदनी में घूमना मेरे लिए वर्जित है।"

रसनिधि गंभीर हो गया। फिर वह किशोरी की ओर देख कर बोला, "तब तुममें रसिकता की अनुभूति कहाँ से हो सकती है। तुमसे यह सब साधनायें कराता ही कौन है ?"

"करती तो मैं स्वयं हूँ, मृणाल केवल सूचना दे दिया करती हैं।"

"इन साधनाओं का कारण ?"

"त्याग-वृत्ति का उत्पादन।"

"इस तरह कहीं त्याग-वृत्ति उत्पन्न की जाती है ! इसका तो तुम्हें ज्ञान ही नहीं, तुम क्या-क्या कर रही हो।"

विलास ने कुछ सोचते हुये कहा, "नहीं ···हाँ। मृणाल बहन सब समझाया करती हैं।"

"वे केवल मौखिक बातें हैं। अनुभव की नहीं।"

"कलंकित करने वाली वस्तु का अनुभव·····"

रसनिधि ने आवेश में आ कर पूछा, "कौन वस्तु कलंकि तकरती है? यदि काव्य कलंकित करता है, रस कलंकित करता है, ज्योत्स्ना का अमृत कलंकित करता है, कल कहोगी कि प्रेम कलंकित करता है—तो यह कलंकित जीवन क्या बुरा है?"

"मुझे निष्कलंक होना है", विलास ने कठोर होकर कहा।

रसनिधि मौन हो गया। क्षण भर बाद उसने कहा, "तो, तुम्हें मुझ जैसे पुरुष भी कलंकित ही मालूम पड़ते होंगे!"

"भगवान शंकर तुम्हें सदबुद्धि प्रदान करें।"

रसनिधि विकल हो कर खड़ा रह गया। उसने कहा, "क्या तुमको रसिकता का अनुभव करने की इच्छा कभी नहीं हुई?"

"मुझे?" विलास कुछ सोच में पड़ गई, फिर बोली, "नहीं, कभी नहीं। इसका मुझे कभी ध्यान ही नहीं आता।"

"ध्यान देने की भी इच्छा नहीं होती?"

"यदि पाप करने में मन न लगता हो तो इसमें बुराई ही क्या है?"

रसनिधि ने दया की दृष्टि से देखते हुये कहा, "विलासवती, रस-मय होना, रस की अनुभूति होना ही मैं मोक्ष समझता हूँ।"

"नहीं, नहीं।"

विलास ने कानों में उँगलियाँ डाल लीं। उसके होठों पर मुस्कान की रेखा खिंच गई।

विलास के हास्य से कोई दूसरा ही भाव टपक रहा था।

"लीजिये, माता जी आ ही गईं," विलासवती भिल्लम और लक्ष्मीदेवी की ओर मुड़ गई।

दोनों चुपचाप आगे बढ़े और रसनिधि ने लक्ष्मी को प्रणाम किया।

लक्ष्मीदेवी ने अपने पति की ओर कटाक्ष करते हुये कहा, "कविवर, आज हमारा घर बहुत वर्षों के बाद पवित्र हुआ।"

"माँ, मुझे आशा नहीं थी कि इस सूखे देश में हमारा इतना सम्मान होगा"—इतना कह कर रसनिधि ने धनंजय को पुकारा, "मित्र, देखो देवी आ गईं।"

आवाज़ सुन कर सरोवर के कमल-पत्रों से निगाह हटा कर धनंजय निकट आ गया।

राठौर राजाओं की परंपरागत मर्यादाओं का अनुसरण करते हुये लक्ष्मीदेवी ने बड़े गौरव से कहा, "भाई, यह घर तुम्हारा ही है; परन्तु मुझे एक प्रार्थना करनी है।" उसके कहने का ढंग राजवंश को सुशोभित ही करने वाला था।

धनंजय निकट खड़ा था। उसने पूछा, "क्या आज्ञा है देवि!"

"इतनी कृपा कीजियेगा कि आप लोगों के काव्य-विनोद की चर्चा बाहर न जाने पावे, अन्यथा आपके सत्संग का फल हम नहीं पा सकेंगे।"

भिल्लम ने कहा, "देवी, कह क्या रही हो।"

"ठीक ही तो कह रही हूँ। ऐसे अतिथि जितने भी दिन रहें, उतना ही अच्छा है। ऐसे लोगों के दर्शन ही कहाँ होते हैं?" लक्ष्मी की वाणी में विषाद का आभास था।

भिल्लम मौन हो गया। रसनिधि ध्यान से सुनता रहा। लक्ष्मी ने विलास को लक्ष्य करके कहा, "बेटी कवियों के दर्शन किये?"

"किये" नतमस्तक होकर विलास ने कहा, मुस्कान ने भी साथ दिया।

"अच्छा, अब चलिये कविराज, मध्याह्न हो रहा है।"

"जो आज्ञा।"

"विलास तू कहाँ जायगी?"

"मुझे अभी ध्यान करना है।"

भिल्लम ने पूछा, "अच्छा कविवर, सब कवियों में शिरोमणि कौन हैं?

धनंजय ने कुछ सोचते हुये आँखें नचा कर कहा, "स्यून देश के अधिपति महाराज भिल्लम सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।"

सब हँस पड़े।

"मैं?"—हतप्रभ-सा होता हुआ भिल्लम बोला।

"हाँ, जिनकी वाणी सुन कर सभी कवियों की रसना पर कविता-नटी थिरकने लगती है, ऐसे रसराज कहे जाने वाले मुंज पर भी जिसने विजय प्राप्त की हो, वह।"

गर्व के कारण भिल्लम हँस पड़ा। ऐसा कहना झूठ था, तो भी उसका हृदय उछलने लगा। लेकिन उसकी स्त्री ने उस हर्ष को अधिक देर तक नहीं रहने दिया।

"कविवर, तो यों न कहो कि मृणाल ही कवि शिरोमणि है।"

"क्यों?"

"आपके स्यून राज्य के परम पूज्य हैं तैलपराज, और उनके भी गर्व को खर्व करने वाली हैं बहन मृणाल।"

महासामंत का मुख रक्तवर्ण हो गया। उसने कुछ क्रोध से लक्ष्मी-देवी की ओर देखा। उस महिला ने यह भाँप कर वार्त्तालाप का रुख बदल दिया।

"कविराज, आपने विदर्भ देश के भवभूति कवि के काव्यों का अध्ययन किया है?"

"आपने किस प्रकार उनका नाम जाना?"

"जब मैं छोटी थी, तो मेरे पिता के यहाँ कविगण उनके गुणों का कीर्त्तन किया करते थे। उनका कहना था कि कलिकाल में न तो ऐसा कवि हुआ है, और न होगा।"

"हमारे ये रसनिधि उनके बड़े भक्त हैं।"

"अच्छा।"

"हाँ, उन्होंने उनके सब नाटकों का पारायण किया है।"

विलास ने पूछा, "माँ, इस कवि की बात तो तुमने मुझसे की ही नहीं।"

लक्ष्मी ने निःश्वास ले कर कहा, "बेटी! तुमसे कह कर कहाँ जाती?"

विलास कुछ समझ न सकी कि उससे कहने में क्या हानि थी। उस समय वह अधिक कुछ नहीं बोली। सबको प्रणाम करके राजमहल के मंदिर की ओर चली गई।

८

सत्याश्रय

विलासवती जब मंदिर में पहुँची, तो उसने अपने को बदला हुआ पाया; इतना ही नहीं, उसे सूर्य में नया तेज दृष्टिगोचर होने लगा और वृक्षों में नई सुंदरता। ध्यान करने के लिए जब वह बैठी, तब उसने अपने अंदर एक प्रकार की आकुलता का अनुभव किया।

धनंजय और रसनिधि उसकी समझ के परे थे, उसको वह अद्भुत और विचित्र प्रतीत हुये। उनके हँसने में संयम नहीं था, न वाणी में गांभीर्य, न शब्दों में वेग ही। वे पापात्माओं जैसे स्वच्छंद देख पड़े, फिर भी उसको उनकी रीति-नीति विचित्र और रुचिकर मालूम हुई। विलासवती को जो शिक्षा मिली थी, चरित्र और भावना और विचार जैसे उसके थे, उनके आगे वे दोनों कवि तुच्छ, संयमहीन और स्वच्छन्द जान पड़े। इतने पर भी उसके हृदय में यह विचार आया कि उनकी बातचीत वह फिर सुनती, उनके मुँह वह फिर देखती।

कभी-कभी उस किशोरी के हृदय में अपनी माता के प्रति एक विशेष समवेदना पैदा हो जाती। यद्यपि बाहर से वह स्वस्थ दीख पड़ती थी परन्तु अनेक बार लक्ष्मीदेवी से मिलने पर, उनकी बातें सुनने पर, उनसे शाबाशी मिलने पर विलास के हृदय में एक अज्ञात, एक असंभावित भाव उत्पन्न हो जाया करता था। उन कवियों को भी देख कर उसके हृदय में ऐसा ही भाव आया।

उसे रसनिधि पर दया आई। बेचारा रसिकता को मोक्ष समझ बैठा। कैसा मोह ? कैसा अनुराग, कैसा अच्छा आदमी और कैसे भ्रम में पड़ा हुआ; तो भी वह दुखी नहीं दिखाई पड़ता था। उसके हास्य में, उसके शब्दों में, उसके नेत्रों में आनंद था, शांति थी। ऐसी शांति

तो अपने को जीवन मुक्त समझने वाली मृणालवती में भी नहीं देखी। आखिर बात क्या है ?

यह रसिकता क्या है ? रस की सृष्टि विलास के ज्ञान की परिधि से बाहर थी। उसने रस का रंग देखा पर परख न सकी। कई प्रश्न उसके मस्तिष्क में आये।

उसने तर्क किया—क्या उससे मोक्ष मिल सकता है ? शांति मिल सकती है ?

उसे मुंज याद हो आया। बहन मृणाल मुंज को पापाचारी कहती थी, परन्तु वह तो आनन्द और शान्ति का मूर्त्ति प्रतीत होता था। क्या पापाचारी के लिए यह शान्ति संभव है ?

वह ध्यान करने बैठी, पर मन को एकाग्र न कर सकी। उसका अंतःकरण रसनिधि और धनंजय की ओर लगा रहा।

उसे ध्यान हो आया कि उसकी माँ ने भी कभी कविता सुना था, फिर किसलिए उसे नहीं सुनाई ? लक्ष्मीदेवी कोई कलंकित तो थी नहीं, यद्यपि उन्होंने कवियों के काव्य का श्रवण किया था। कवियों में कौन ऐसा दुर्गुण था जिसके कारण मृणाल बहन ने उन्हें देशनिकाला दे दिया था।

अन्तिम प्रश्न का उत्तर उसे सरल प्रतीत हुआ। ऐसे स्वच्छन्द आदमी यदि देश में रहने लगें, तो लोगों का शुद्ध और सरल जीवन भ्रष्ट हो जाय।

इन विचारों से उसे मालूम हुआ कि वह स्वयं ही पतित होती जा रही है। संयम के पवित्र वायु-मण्डल में से निकल कर साधारण और पतित जीवन की गली की ओर पदार्पण करती जा रही है। तैलंगण की साम्राज्ञी होना, अकलंक (सत्याश्रय) जैसे शुद्ध प्रभावशाली वीर की अर्द्धाङ्गिनी होना, अपने चरित्र बल से सारे संसार को शुद्ध करना उसके भाग्य में लिखा था। क्या यह मूर्खता उसे शोभा दे सकती है ?

यह विचार आते ही उसका मन ध्यान में लग गया और कवियों के समागम से उत्पन्न हुई लहरें शान्त हो गईं।

वह ध्यान करने के लिए आँखें मींचना ही चाहती थी कि उसको निगाह में सत्याश्रय पड़ा।

वह शान्ति और दृढ़तापूर्वक चला आ रहा था, मुख पर कठोरता और निश्चलता थी। तैलंगण का भावी शासक, पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करके, भावी अर्द्धाङ्गिनी को रिझाने आ रहा था। उसके मुँह पर उमंग की छाप नहीं थी और न गति में उत्साह था। मुखमुद्रा पर केवल कर्त्तव्य-परायणता अंकित थी।

उसको देखते ही विलास ज़रा शरमा गई। उसे यही शिक्षा मिली थी कि पति की चरणधूलि का एक-एक कण पूजनीय है। पति का एक-एक शब्द मुक्ति-मंत्र है। अपने ईश्वर को साक्षात् आते देख कर उसे प्रसन्नता हुई। फिर भी उसे ऐसा लगा जैसे अनजान में ही रसनिधि उसके समक्ष उपस्थित हुआ हो। उसके हृदय में एक स्पष्ट असन्तोष की लहर दौड़ गयी।

सत्याश्रय और रसनिधि दोनों ऐसे आदमी थे, कि एक के बाद दूसरे को देखने पर उनके स्वरूप तथा स्वभाव की भिन्नता का विचार हृदय में आये बिना नहीं रह सकता था।

सत्याश्रय अधिक बलवान था, उसका मुख-मण्डल गौरव-पूर्ण और ओजस्वी था। परन्तु उसके शरीर में रसनिधि की-सी छटा न थी। उसकी चाल में रसनिधि का-सा उत्साह न था और न उसके मुँह पर वैसा आनन्द तथा आवेश ही। कवि को देख कर आह्लाद की लहरें उठती थीं और राजकुमार को देख कर दर्शक आतंक से सिहर उठता था। एक दर्शनार्थी के हृदय को हरता था, और दूसरा उस पर अधिकार जमाता था।

विलास को भास नहीं हो रहा था कि उसका हृदय इस प्रकार की

तुलना से क्रमशः असंतोष का अनुभव कर रहा है। उसको केवल एक अपरिचित विचित्रता प्रतीत हो रही थी।

कुमार सत्याश्रय ने महादेव का दर्शन किया फिर विलास के समीप आया।

"विलासवती! नमस्कार।"

कुमार ने वैसे ही किया जैसे किसी देवी के आगे उसका भावुक भक्त सहज नमस्कार कर रहा हो।

विलास ने सकुचा कर कहा—"नमस्कार कुंवर! विजय-लाभ कर आये?"

"हाँ, भगवान पिनाकपाणि की कृपा से पिता जी की विजय हुई।"

'और, मालवराज पराजित हुए?"

"हाँ, सत्य की जय हुई।"

"आप सकुशल तो हैं?" विलास ने गम्भीरता से पूछा।

तुरन्त ही उसे रसनिधि की याद आई, उसके साथ की गयी स्वच्छंद बातचीत अभी तक वह भूली नहीं थी।

"हाँ, मैं खुशखबरी सुनाने आया हूँ।"

"क्या?"

"ईश्वर की कृपा हुई, तो अब हमारा विवाह हो जावेगा।"

यह सुन कर विलास भावावेश में आ गई और उसके मुंह से अचानक निकल गया—"हैं?"

सत्याश्रय ने शान्त मुद्रा में कहा—"हाँ, पिता जी की आज्ञा है।"

किशोरी ने लज्जित हो कर क्षण भर के लिए नीचे देखा। दूसरे ही क्षण उसने पूछा, "बहन जी की क्या सलाह है?"

"उन्होंने तो कभी से मुहूर्त्त पक्का करा रखा है।"

विलास आगे कुछ न बोली।

"विलासवती, बहन जी की कसौटी पर सोलहो आने खरी उतरी हो।"

"अच्छा।"

"हाँ, उन्हें निश्चय हो गया है कि तुम महाराज आहवमल्ल की पुत्रवधू होने योग्य हो गई हो।"

"अहोभाग्य।"

"ठीक है, साथ ही मेरा भी अहोभाग्य।"

विलास ने इसका उत्तर नहीं दिया।

"तो अब मैं जा सकता हूँ!"

विलास ने कहा, "जैसी इच्छा।"

"जयशंकर।"

सत्याश्रय जिस स्वाभाविकता से आया था, उसी स्वाभाविकता से वापस लौट गया।

विलास को इन बातों में कोई अनोखापन नहीं लगा परन्तु, किसी अदृश्य कारणवश उसका हृदय खिन्न हो उठा। वह सोलह वर्ष की हो चुकी अभी उसके हृदय ने प्रेममय आवेशों का कोई अधिक अनुभव नहीं किया था। संयम के अभ्यास के कारण उसका हृदय हमेशा निर्विकार रहा; इसीलिए आज जब स्पष्ट रूप से उसने खिन्नता का अनुभव किया तो यही बात उसे विचित्र और अस्वाभाविक-सी लगी। किन्तु, आज विलास को इतने अद्‌भुत अनुभव हुये थे कि उसने इस विचित्रता पर अधिक सोचा ही नहीं।

उसका ध्यान आगामी मास में होने वाले अपने विवाह पर गया। विवाह क्या है? कैसे होता है? उसे कुछ-कुछ ऐसा मालूम था कि नाटक नाम के काव्यों में विवाह की चर्चा अधिक स्थान पर आती थी। फिर उन काव्यों में किस प्रकार विवाह होता होगा?

कवि और काव्य दोनों को वह हेय समझती थी फिर भी जिस बात का अनुभव स्वयं वह करने वाली थी, वह दूसरों को कैसा लगता होता, यह जिज्ञासा उसके हृदय में उत्पन्न हुई। उसने बहुत कोशिशें कीं, परन्तु इस जिज्ञासा को दबा नहीं सकी। और रसनिधि से पूछ कर इस जिज्ञासा को शान्त करने का निश्चय उसने कर लिया।

९

प्रथम मिलन

मृणालवती के समान संयमित एवं शीलवती महिला के हृदय में क्षोभ के लिए ज़रा भी स्थान नहीं था। किन्तु उस समय उसका मुँह देखने से ऐसा लगता था कि किसी अप्रकट क्षोभ ने इसके अन्दर घर कर लिया है। उसका साहस, उसकी सांसारिक विरक्ति और मुंज की नीचता के प्रति उसका तिरस्कार जैसे का तैसा ही बना रहा, बल्कि कुछ अंश में बढ़ गया। फिर भी तैलंगण के महाशत्रु के सामने वह जायगी, यह विचार उसके हृदय में अस्वस्थता पैदा कर रहा था। इसके परिणाम-स्वरूप उसका साहस भी कृत्रिम हो गया। मुंज के प्रति उसका उपेक्षा भाव, उसकी खीझ बढ़ती ही गई।

किसी दूसरे क़ैदी से मिलने का विचार मृणाल के मस्तिष्क में आ सकता था? किन्तु मुंज से मिलने का विचार उसे सहज-साधारण प्रतीत हुआ। मुंज को हाथी से कुचलवा देने की लालसा उसके मन में वर्षों से घर किये हुए थी। मुंज की नीचता का दृष्टान्त वर्षों से उसे प्रिय लग रहा था। अपने विचार से वह अपने को सत्य की प्रतिमा समझ रही थी। और अवन्तिनरेश मुंज उसकी निगाह में झूठ एवं पाप का अवतार था। आज ऐसे पापाचारी के सामने जा कर सत्य की विजय वैजन्ती फहरा आना मृणाल को परमपुनीत कर्त्तव्य प्रतीत हुआ। पृथ्वी के पापियों में अपने को श्रेष्ठ समझने वाले आदमी को उसकी नीचता का परिज्ञान करा देना, भला इससे बढ़ कर और कौन-सा पवित्र एवम् धार्मिक अनुष्ठान हो सकता है?

मुंज से स्वतः मिलने के निमित्त जाते समय उसके अंतस्तल में यह धारणा प्रस्फुटित हुई। उससे मिलने में वह कहीं कलंकित तो नहीं

होगी ? कलंक भला क्योंकर लग सकता है ? ऐसे नर-पिशाच से मिलना भी कलंक है—क्यों नहीं ? क्या इतने वर्षों की घोर तपस्या इतनी निरर्थक है कि वह पापी से संलाप करके ही सकलंक हो जायगी। अपने विशुद्ध हृदय से सुरक्षित हो कर भी वह इस प्रकार से क्यों संशयालु हो रही है।

धीरे-धीरे होठ पर होठ चढ़ा कर, अपनी दिव्य पवित्रता और वैराग्य की महत्ता से प्रमत्त वह अवंतिका के निराधार नरेश से कारागृह में मिलने के निमित्त गई। प्रहरी मृणाल को देख कर विमूढ़-सा हो गया और विकंपित हाथों से उसने गुप्त कारागार का द्वार खोल दिया।

स्थान छोटा तथा घोर अन्धकारपूर्ण था, पश्चिम दिशा की ओर से एक छिद्र से सूर्य का प्रकाश आ रहा था।

मुंज नींद में था। हाथ का तकिया था और पैर एक दूसरे पर थे, उसके अंग-अंग अपूर्व थे। नसों की गठन स्पष्ट और सुन्दर दीख रही थी। प्रकांड शरीर था उसका। अंगों की शोभा और वर्ण की विमलता का क्या कहना ! साथ-साथ कोई अज्ञात छटा निद्रावस्था में भी उसके शरीर से छिटक रही थी। बन्दीगृह के अन्धकार में उसकी तेजस्वी देह ऐसी पड़ी हुई प्रतीत होती थी जैसे शेषनाग पर लक्ष्मीपति नारायण सो रहे हों।

मृणाल क्षण भर दरवाज़े पर खड़ी रही और तीखी निगाह से मुंज की ओर देखती रही। मुंज पराजित हो चुका था, मृणाल को आशा थी कि वह पराजित राजा को निराधार और चिन्ताग्रस्त स्थिति में देखेगी। किन्तु, अरे यह तो निर्विकार और निश्चिन्त हो कर सो रहा है ! इतनी दुर्दशा का अनुभव करके भी स्वस्थ दीख रहा है ! मृणाल के हृदय में उसके प्रति और भी तिरस्कार बढ़ गया।

अवहेलना के अतिरेक में वह वहाँ से उल्टे पैर लौटना ही चाहती थी कि मुंज जाग पड़ा। धीरे धीरे उसने अपनी बड़ी-बड़ी और सुन्दर

आँखें खोलीं। छटा से शिर उठाया, स्थिर और मधुर हास उसके मुख-मंडल पर छा गया।

नेत्रों में आकुलता नहीं थी; आनंद था। हँसी में क्षोभ नहीं था, मादकता थी।

मृणालवती जाते-जाते रुक गई। अगर वह चली जाती तो कायरता प्रकट होती। और जिस काम से आई थी, वह अधूरा रह जाता। मुंज की हँसी में उसे अपमान की गंध मालूम हुई और इसीलिए वह तीक्ष्णता तथा न्याय की प्रतिमा बन कर लौट आई।

मुंज की आँखें खुशी से मानो नाच रही थी, उसके होंठ थिरक रहे थे। इतना ही नहीं, उसका सारा मुखमण्डल आकर्षक और आनंद-दायक बन गया था।

'मृणालवती! यदि आई हो, तो जरा ठहर तो जाओ।"

मुंज के स्वर में नरमी थी, पवित्रता थी; उसमें मैत्रीभाव भी था। ऐसा स्वर सब का नहीं होता। जो अनंत सुख का आनंद लेता है और सब मनुष्यों को स्नेह से देखता है, उसी की बोली ऐसी होती है। लेकिन ऐसा तो विरला ही हो सकता है।

मृणाल पर इस स्वर का और तो कोई असर हुआ नहीं, लेकिन अपना स्वर नीरस न निकल जाय, इस आशंका से उसने सहसा उत्तर नहीं दिया। वह केवल मुंज की ओर लौट भर आई। उसे हँसता देख कर मृणाल की मुखाकृति पर कठोरता की रेखाएँ खिंच आईं और कुछ क्रोध भी हो उठा।

मृणाल को बचपन ही से अपनी महिमा का भान होता आया था, क्योंकि उसके भ्रूभंग मात्र से सारा तैलंगण देश थर्रा उठता था। अपने भ्रूभंग से पैदा होने वाले उसी भयंकर प्रभाव को मुंज की मुख-मुद्रा पर अंकित देखने के लिए क्षण भर टकटकी लगा कर वह उसकी ओर देखती रही।

लेकिन जवाब में मुंज ने फिर हँस कर कहा—"यदि आई हो तो मुझे जी भर कर अपना रूप निहार लेने दो। मैंने तुम्हारे रूप की बड़ी प्रशंसा सुनी है।"

मृणालवती ने यह शब्द सुने तो सही लेकिन उनका मतलब उसकी समझ में ज़रा भी नहीं आया।

तापसी, महिमामयी, अकलंक चरित्र, और अस्पर्श्य मृणालवती से ऐसे लफंगेपन से कोई नहीं बोल सकता था। किन्तु इस समय यह शब्द उसके कान में पड़ रहे हैं! और उसी को सम्बोधित करके।

गुस्सा के मारे उसका माथा हिलने लगा उसकी आँखें विकराल हो उठीं।

"पापी ऐसी दुर्दशा में तू पड़ा हुआ है फिर भी क्या बोलना चाहिये और क्या नहीं बोलना चाहिये यह समझ में नहीं आया।"

"दुर्दशा कैसी?"

मृणाल ने तिरस्कार का भाव दिखलाते हुए कहा, "दुर्दशा? पूछ अपने यश से, पूछ अपने कवियों से···और अपनी फौज़ से भी पूछ ले। मुंज के मुख पर फिर हँसी छा गई, वहाँ आनन्द था, विद्रूपता नहीं थी। वह कहता गया—"मेरे यश से ही तो खिंच कर तैलप की तापसी बहन यहाँ तक आई है; मेरे कवियों के काव्यों ही से तो तुमको मुझे आ कर देखने का मोह हुआ है। और मेरी फौज़ की बहादुरी से तिलमिला कर ही तो मुझे पकड़ने की तुमने कोशिश की।"

"और कल तू कुत्ते की मौत मरेगा।"

"मुंज जैसे राजा की इससे बढ़ कर कीर्तिवान मृत्यु और क्या हो सकती है?"

मृणाल मूक हो गई। जिस आदमी को वह अपने प्रभुत्व और प्रताप के भार से कुचलने आई थी, वह तो भूमि पर होते हुए भी सिंहासन पर विराजमान जैसा प्रतीत हो रहा था, कारागृह में होते हुए

भी मानों उसे महल का आनन्द मिल रहा था। स्वस्थतापूर्वक बैठा हुआ वह निर्द्वन्द आनन्द से बातें कर रहा था।

मृणाल की मुंज के प्रति अवहेलना बढ़ी। साधारण मनुष्य दुख में पड़ कर शान्ति खो बैठता है। परन्तु यह कैसा पक्का पापी है कि कठिन कारावास भी इसकी शान्ति को भंग नहीं कर सका।

"तुझे ज्ञात है राक्षस, तूने क्या-क्या पाप किया है।"

"मुझे जो भाया हमेशा वही किया, इसमें पाप की बात क्या थी।"

मृणाल अकुला गई। स्वच्छंद आचरण ही उसके विचार से पाप था। कुछ रुक कर वह बोली, "जो मन को भाये वही कर बैठना पाप नहीं तो क्या है? इसीलिए तो तू इसी देह से नर्क भोग रहा है।"

थोड़े से आश्चर्य से मुंज ने आँखें बड़ी कर लीं। उसकी आँखों में मद था, तेज था। मद और तेज ने मृणाल का ध्यान खींच लिया।

"तुम नरक किसे कहती हो।"

"नीच, तू जिस स्थिति में पड़ा है, उसको।"

मुंज हँस पड़ा, "यह तेरा भ्रम है मृणालवती।"

"कैसे?"

"स्वर्ग या नर्क की मुझे पर्वाह नहीं है परन्तु अभी जो मैं अनुभव कर रहा हूँ, उससे बढ़ कर सुख स्वर्ग में नहीं है। और नरक में जाने पर भी वह सुख मेरा घट नहीं सकता।"

'यह झूठ मेरे आगे नहीं चल सकता।"

"मैं भला झूठ बोलूँगा ही किस लिए!"

"अपनी दुर्गति छिपाने के लिये।"

"कैसी दुर्गति।" मैं तो जैसे पहले था, वैसे अब भी हूँ।"

"कौन?"

"पृथ्वी वल्लभ" हँस कर नेत्रों से अमृत बरसाते हुये मुंज ने कहा।

"यहाँ कहाँ, पृथ्वी वल्लभ तो अब वहाँ महल में बैठा हुआ है।"

"कौन कहता है?"

"सारी दुनिया।"

मुंज ने निश्चिन्तता से कहा, "तो दुनिया झख मारती है। जो सुख मैं महल में पाता था, वही यहाँ भी अनुभव कर रहा हूँ। जो सुख विजय में अनुभव करता था, वही पराजय में भी मान रहा हूँ। पृथ्वी का जैसा वल्लभ तब था, वैसा ही अब भी हूँ।"

"निर्लज्ज! यह तो केवल मन को ख़ुश करने का सपना है।"

मुंज ने सहज भाव से कहा, "तुम सपना समझो, पर जब तक मेरी वल्लभता क़ायम है तब तक यह बात सच ही रहेगी।"

मृणालवती पल भर देखती रही। उसने सोचा, बेशरमी की भी कोई हद है? इसके बाद वह बोली, "तैलप के प्रताप का स्वाद चखना अभी बाक़ी है।"

"प्रताप! और उस बेचारे का?"

"उसके प्रताप में तुझसे कहीं अधिक तेज है।"

"कौन कहता है?"

"अपने हृदय से पूछो। तुम्हारा भाई और तुम दोनों ही मेरे प्रताप से चकाचौंध में पड़ गये!"

"कौन? चकाचौंध में हम पड़ गये हैं और तेरे प्रताप से? क्या बक रही है।"

"गुस्सा न करो मृणालवती, इस चंचल जीवन को यों क्यों खो रही हो?"

"तेरा यह उपदेश मुझे नहीं चाहिए।"

"तभी तो ऐसी हो गई हो। मेरा उपदेश सुना होता, तो इस तरह तापसी का वेश धारण करके जीवन बिताने का क्या काम था।"

तिरस्कार का त्याग करके जिज्ञासा भाव से मृणाल ने पूछा, "और, तुझे कैसा जीवन बिताना पड़ा है?"

पृथ्वी वल्लभ ने अंगड़ाइयाँ ले कर और तन कर कहा, "मैं ? मैं तो हमेशा ही सृष्टि का रसपान करता रहता हूँ। मेरा एक भी पल दुखमय हो कर नहीं कटा है, एक-एक प्रसंग से एक-एक पल से, मैंने रस निचोड़ा है। क्या तुमने भी इस तरह का जीवन बिताया है ? मृणालवती, तुम मेरी दुर्दशा की बात करती हो ? जब रस चूसने की यह शक्ति चली जायगी, तब की बात नहीं कहता, परन्तु अभी तक तो मैं पृथ्वी वल्लभ ही हूँ।"

मृणाल सुनती रही। पृथ्वी वल्लभ के शब्दों में गर्व था परन्तु आडंबर या ढोंग नहीं था। उसका एक-एक शब्द सच मालूम पड़ रहा था। मृणाल को एक अनोखा अनुभव होने लगा। अपना रोब गाँठने के बदले वह स्वयम् ही पृथ्वी वल्लभ की शान्त और आकर्षक सत्ता की महिमा से प्रभावित हो गई।

"तो मुंज, तू मुझे पहचानता नहीं ?"

"पहचानने की क्या ज़रूरत है, जो तुम हो वह मेरा मन जानता है।"

मृणालवती ने परुष स्वर में पूछा, "मैं क्या हूँ ?"

"मान-खंडिता मानिनी।"

"क्या !" होंठ चाटते हुये मृणालवती ने कहा—

"मुझे फँसाने आई थी, और स्वयं ही फँस कर जा रही हो। तुम्हारी जैसी महामानवती को वश में करना इससे बढ़ कर और क्या सुख होगा ?"

मुंज खड़ा हो गया। उसके विराट शरीर की मोहकता चारों तरफ़ फैल गई।

"तू मुझे वश में करना चाहता है" दाँत पीसती हुई मृणाल ने पूछा।

मधुर स्वर में मुंज ने कहा, "न, तुम स्वयं ही मेरे वश में आना चाहती हो मेरे पास आ कर तुमने भूल की मृणालवती। अब तुम्हारे रंग-ढंग कुछ और ही हो जायँगे। अब तुम्हारे अन्दर नया जीवन आये बिना न रहेगा" मुंज ने अपने स्वर को बहुत ही धीमा करके कहा।

मृणाल ने मुंज के शब्दों का अर्थ स्पष्ट रूप से नहीं समझा। पृथ्वी पर पैर पटकती हुई बोली, "देखती हूँ, तू अब कैसे जीता रहता है।"

"इस समय तो ज़िन्दा हूँ, आगे की पर्वाह नहीं है।"

हृदय की विकलता पर पर्दा डालते हुए मृणाल ने कहा, "देखती हूँ, कैसे तुझे पर्वाह नहीं होती।" फिर स्वर को ज़रा तेज़ करके वह बोली, "तेरे रोम-रोम में कीड़े पड़ेंगे, फिर देखूँगी।"

"मेरे रोम-रोम में कीड़े पड़ जायं, तो भी मुझे पर्वाह नहीं। चिन्ता तो तुम जैसी के लिए है कि जिसके एक-एक विचार से नरक की दुर्गन्ध आती है।"

मृणाल स्थिर भाव से कुछ देर तक देखती रही और बोली, "अभी तुझे बहुत कुछ करना है मुंज, याद रहे।"

वह महल की ओर लौटने लगी।

मुंज हँस पड़ा। बोला, "अरे! यह कौन-सी बात है। जो आनन्द मिला, वही काफ़ी है।"

"हाँ, पूरा-पूरा आनन्द मिलेगा।" क्रोध के आवेश में मृणाल चली गई। इस समय उसका दिमाग़ क़ाबू में नहीं था।

"इससे बढ़ कर और क्या होगा" जाते जाते उसने पृथ्वी वल्लभ की मीठी और हँसी भरी आवाज़ सुनी।

१०

दया

वहाँ से चल कर मृणालवती तुरन्त ही महल पहुँची। उसके चित्त की स्थिति विचित्र हो गई थी।

उसे लगा कि वह निर्विकार है, स्वस्थ है; लेकिन उसका खून खौल रहा था, हृदय में कोई अपरिचित वस्तु प्रवेश कर गयी थी। जब वह मुंज से मिलने गई तब कुछ और थी और इस समय कुछ और ही मालूम हो रही थी।

उसने सोचा, मुंज नीचता का अवतार है, उसके साथ बातें करने से मृणाल की पवित्रता दूषित हो गई है। इसीसे उसका चित्त ऐसा विकल हो गया है और पुनः स्वस्थता प्राप्त करने के प्रयत्न की अपेक्षा उसके हृदय में मुंज के प्रति तिरस्कार भावना ही बढ़ रही थी। मुंज बार-बार उसकी दृष्टि में आ जाता था।

अपने को स्वस्थ करने के लिये उसने स्नान किया और आंतरिक शुद्धि के लिये ध्यान करने बैठी। वह मुंज पर बहुत कुपित हो गई थी, और वह क्रोध रजोगुण के आविर्भाव होने के कारण ही था, अब उसे बाहर निकाल देने की चेष्टा में वह जुट गई।

वह जीवन्मुक्त थी। उसके पास क्रोध का क्या काम उसको तो निर्विकार दृष्टि से मुंज के पाप-पुण्य का हिसाब लगा कर तब उसके साथ व्यवहार करने की ज़रूरत थी।

मृणाल का क्रोध स्वाभाविक नहीं था। उसकी अपेक्षा मुंज अधिक दया का पात्र था। उसकी-सी जितेन्द्रिय तापसी क्या मुंज के प्रति दया नहीं दिखला सकती? बात ठीक थी। क्रोध को शान्त करने के लिए मुंज के विषय ही में विचार करके उसी के प्रति करुणा उत्पन्न करना

चाहिए। ध्यान से मुंज अलग होता ही नहीं था, अतएव, वैसा करना सरल था। उसे अपने संयम का ठीक-ठीक खयाल आया। थोड़े ही देर में क्रोध को शांत करने में वह सफल हुई और मुंज के प्रति उसका भाव सहानुभूतिपूर्ण और करुणामय हो गया। परन्तु किसी अज्ञात कारण से उसका दिल चुलबुला रहा था।

यह किस लिए चुलबुला रहा है, सोचने पर इसका कारण मालूम हो गया। इस प्रकार दया दिखला कर वह पापी के प्रति सच्चा न्याय होने नहीं दे रही थी। वह पापी था उसने मृणाल जैसी स्त्री का भी तिरस्कार किया था। तापसी को अपने मान-अपमान का चिन्ता नहीं थी फिर भी पाप की सजा तो मिलनी ही चाहिए।

इस आदमी ने कैसी बेशर्मी की थी। पाप के कैसे कीचड़ में फँसा था। उसे इतना भी भान नहीं कि कहाँ है। उसको यह भान करा देना होगा; नहीं तो सच्चा न्याय नहीं हो सकेगा।

तो फिर उसे कौन-सी सजा दी जाय? इसी समय दंड देने की एक पुरानी प्रणाली उसे याद हो आई। वही ठीक मालूम हुई।

पराजित राजाओं को पुराने युग में कैसा दंड मिलता था? उन्हें काठ के पिंजरों में बन्द करके राजमहल के सामने वाले चौक में रखा जाता था। और लोगों के उपहास से उनका मान भंजन कराया जाता था। मुंज को? यही दंड क्यों न दिया जाय?

मृणाल उठी और भाई के पास गई। तैलप राज के गले में यह बात उतर गई। सत्याश्रय ने काठ का जो पिंजड़ा तैयार करवाया था, उसी में मुंज को रखने की आज्ञा दे दी गई।

मृणाल को शांति मिली अब जा कर सच्चा न्याय हो पाया। मुंज के बारे में वह सोचने लगी, नीच कहाँ गई तेरी पृथ्वी वल्लभता? अब बतला।

इतने में उसे यह भी खयाल आया कि अपमान का यह आघात वह किस प्रकार सहता है, देखना चाहिए।

इसमें भला कौन-सी बुराई थी। बेचारा मुंज था तो दया का पात्र, केवल न्याय का दंड सह रहा था; लेकिन उसकी यथार्थ स्थिति पर ध्यान देना क्या उस जैसी बुद्धिमती महिला का कर्त्तव्य नहीं था!

क्यों नहीं।

११

रसनिधि का खेद

यह वातावरण विलास को अज्ञात मधुर-सा प्रतीत हुआ। उसके अंतस्तल में नवजीवन का संचार होने लगा मानो किसी ने उसे अमृत पिला दिया हो।

उसका हृदय अभी पिघला नहीं था, उसके हृदय की स्थिति वैसी ही थी, जैसी सूर्य की किरणों के प्रथम स्पर्श से विकसित कलिका की हो जाती है। वह समझ ही नहीं पा रही थी कि यह हो क्या रहा है। पर जो कुछ हो रहा था वह बड़ा ही आह्लादक था इसमें कोई संदेह नहीं। यह आह्लाद चारों दिशाओं में बिखरा हुआ था। विलास का विवाह निश्चित हो गया था, इससे तो वह और भी प्रमुदित हो रही थी। वह सनातन धारणा के अनुसार कुमार सत्याश्रय को अपना हृदय दे चुकी थी, उसके चरणों की पूजा करती थी, उसकी अर्द्धांगिनी बनने के स्वप्नों का अनुभव करके ही वह जी रही थी। इस समय उन सपनों में भी एक अज्ञात ज्वाला पैदा हो गई। यह ज्वाला प्रकट नहीं थी, क्योंकि सांसारिक अभिलाषाओं का परिज्ञान विलास को नहीं था।

रसनिधि से जिस रसिकता की बात उसने सुनी थी, उससे विलास अकुला गई। सोचा— आखिर यह रसिकता क्या है? उसकी जिज्ञासा प्रकट हो गई। पहले तो उसने इस जिज्ञासा को दबाने की चेष्टा की, कहीं उसकी यह जिज्ञासा कलंक की बात न समझी जाय। अवकाश मिलने पर उसने मृणाल से भी पूछने का निश्चय किया लेकिन आज उसे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था।

वह फिर सोचने लगी—क्या हानि है, यह जानने से क्या क्षति है? माँ ने भी तो नाटक सुने हैं। पिताजी ने भी किसी समय अनेक

सुकवियों को अपने यहाँ स्थान दिया था। तब इन कवियों से मिल कर शंका-समाधान करना क्या बुरा है ?

मृणालवती और दिन की भाँति आज अभी नहीं आई थी, इसलिए विलास ईश्वर की आराधना छोड़ कर अपनी जिज्ञासा मिटाने के प्रयत्न में लग गई।

कुछ देर तक वह शांतिपूर्वक बैठी रही कि कहीं मृणाल न आ जाय। पर जब उसके आने की आशा न रही, तब उसने उठने का साहस किया। यह उसके लिए विजय की बात थी। आज उसे नियमोल्लंघन का दण्ड देने वाला कोई नहीं दीखता था।

इन नए विचारों को वह अपने माँ के सामने रखना और उनका उत्तर सुनना चाहती थी इसलिए वह अपने पिता के महल की ओर चल पड़ी।

महासामत का महल राजप्रासाद का ही एक भाग था। दोनों के उद्यान पहले एक ही में मिले थे लेकिन आज कई साल हुए बीच में एक दीवाल खड़ी करके उसके दो भाग कर दिए गए थे। उद्यान के इस प्राकार में, उस ओर जाने के लिए एक छोटा-सा दरवाज़ा था। उसीसे विलास अपने पिता के महल में जा रही थी।

संध्या हो चली थी, सूर्य की मन्द मधुर स्वर्णिम आभा से उद्यान जगमगा रहा था। विलास पल भर के लिए ठिठक गई। आज उसे इस वाटिका की अनोखी छवि कैसी लग रही थी ?

उद्यान के बीचोबीच वृक्षों का एक झुरमुट था। उसके निकट पहुँचते ही विलास ने एक आदमी को देखा, वह सो रहा था।

"कौन है ?" विलास ने पूछा।

सोए हुए आदमी ने आँखे मलते हुए चारों ओर देखा, विलास उसे पहचान गई।

"कौन, कविराज ?"

"हाँ, मैं हूँ।" रसनिधि ने कहा।

विलास को कुछ हिचकिचाहट हुई, उसे इस समय रसनिधि से भेंट हो जायगी, ऐसी उम्मीद नहीं थी।

"आप कर क्या रहे हैं ?"

"कुछ नहीं। भिल्लमराज को समर्पण करने के लिए एक अष्टक बना रहा था।"

विलास ने हँस कर पूछा, "दिन भर आप लोग कविता ही रचते रहते हैं ?"

"नहीं तो, रसनिधि ने कुछ खिन्न स्वर में कहा। कवि के मुँह की उदासीनता पर अपनी आँख गड़ाते हुए किशोरी ने पूछा, "आपको यहाँ किसी प्रकार की असुविधा तो नहीं है ? किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं है ? किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो कहिएगा।"

सिर हिलाते हुए कवि ने कहा, "जो चीज़ मुझे चाहिए वह चीज़ भला तुम कैसे दे सकोगी ?"

"किस वस्तु की आवश्यकता है, आपको जो भी चाहिए, पिता जी से कहिएगा, तुरंत ही मिल जायगी।"

"अभी भोली हो तुम विलास ! बहन, भला मेरी अभीष्ट वस्तु यहाँ कहाँ से मिल सकती है ? कहाँ मालवा और कहाँ तैलंगण !"

"कविवर, यहाँ किस बात की कमी है ? आपने अभी कुछ देखा ही नहीं, इसीसे ऐसा कह रहे हैं।"

"नहीं, ऐसा नहीं है। तैलंगण चाहे स्वर्णमय ही क्यों न हो, मेरे किस काम का ? मुझे तो अपनी अवंतिका के परिजन, पुरजन, ही प्रिय हैं; महाकालेश्वर का गगनभेदी घन्टा-नाद भी है, और प्रिय है अपने पिता की पुनीत दाह-भूमि। वह सब कहाँ यहाँ मिल सकता है।"

"यही तो माँ भी कहा करती हैं। आप भी वही कह रहे हैं, उनको भी स्थूल देश के बिना चैन नहीं है।"

"सत्य है।"

"लेकिन तुम्हें किस बात का दुख है ? माँ तो एक समय महारानी थीं, इसलिए उन्हें दुख होता है। पर तुम तो वहाँ भी कवि थे और यहाँ भी हो। मुंजराज की अपेक्षा मेरे पिता तुम्हारा कहीं अधिक आदर करेंगे।"

रसनिधि ने फिरफिरी-सी हँसी हँसते हुए कहा, "विलासवती, परजनों की मित्रता से स्वजनों की सेवा श्रेष्ठ है।"

"मैं इसका अनुमोदन नहीं कर सकती।"

"क्योंकि तुमने स्व और पर के बीच का भेद नहीं समझा है ?"

"क्या आपका विवाह हो चुका है ?"

"हाँ", कवि ने कुछ रुक कर कहा।

"तो फिर वही याद आ रही होंगी।"

"हाँ, मैं तुम्हारा जैसी त्याग-वृत्ति का सेवन थोड़े ही करता हूँ।"

"देखिये, मैं उसी समय कह रही थी त्याग-वृत्ति का सेवन न करने से ही तो आपको दुख हो रहा है।"

"विरहावस्था में दुखी होने के बदले निठुर बन कर प्रेमी जनों को भूल जाना यह भी क्या कोई बड़प्पन है।"

विलास की समझ में कुछ भी न आया। उसने अपने पैर आगे बढ़ाए। दोनों धीरे-धीरे महासामन्त के महल की ओर चले।

"विरह किसे कहते हैं ?"

"बिना प्रेम के विरह किस प्रकार समझा जा सकता है ?"

रसनिधि को आश्चर्य हुआ और वह उस भोली-भाली किशोरी की ओर ताकने लगा।

विलास ने कहा, "मेरी जरा-सी बात, कविवर, मान लीजिए; आप थोड़ी तपस्या कीजिए। चित्त शांत हो जायगा।

ऐसी शांति का मैं क्या करूँगा ?—शिर हिलाते हुए रसनिधि बोला, "जब चित्त अशांत है और अशान्त होने का कारण भी है, तो फिर किस लिए यह दुष्प्रयत्न किया जाय ? मेरी स्त्री भी तुम्हारी

जितनी आयु की होगी, रात-दिन उसकी आँखों से आँसू बहते होंगे। उसके लिए एक-एक पल पहाड़ बन गया होगा। उस बेचारी को तो ऐसी तकलीफ़ उठानी पड़े, और मैं स्वार्थी अपनी व्यक्तिगत शांति के निमित्त तपस्या करूँ ? निष्ठुर बन जाऊँ ? जो सुख दे, उसके लिए दुखी होना भी एक आनन्द है।"

विलास ने दया द्रवित दृष्टि से कवि को देखा और बोली, "फिर तो आपको दुख में भी सुख का अनुभव होता होगा ?"

"नहीं·····।"

"तो फिर ?"

"दुखी न होने के लिए मैं अपने हृदय के झरने को सुखा डालूँ, तो कभी वह सुखसिक्त नहीं होगा।"

"यह भ्रममात्र है। सुख अर्थात् दुख का अभाव।"

"कौन कहता है ?" रसनिधि ने ज़रा चिढ़ कर कहा, "तुम्हें यह पता ही नहीं कि सुख किसे कहते हैं। सुख का मतलब केवल दुःख का न होना नहीं है; केवल संतोष ही सुख नहीं है; सुख है देह और हृदय की तरंगों का नृत्य। सुबह चिड़ियों की चहचहाहट सुनी है ? उसका नाम सुख है।

"यह सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ?"

कवि ने थोड़ी देर उसके मुँह की ओर देखा और कहा, "जब तुम्हारा विवाह होगा, तब समझ जाओगी। तुम्हारा विवाह कुमार सत्याश्रय के साथ होने वाला है न ?"

"हाँ।"

"तो उन्हें देख कर तुम्हारा अंतःकरण थिरक-थिरक कर नाचने नहीं लगता।"

"किस लिए ? वह भी संयमी हैं और मैं भी।"

"उनको छू कर, उनके शब्द सुन कर तुम्हारे अंतरतम को शांति नहीं मिलती, प्रसन्नता नहीं होती ?"

"कभी-कभी होती है।"

कवि ने कहा, "तो सुख और दुख का अनुभव तुम्हें कैसे हो सकता है?"

विलास हँस पड़ी—मुझे समझाइए न।

"तुम्हारा हृदय शून्य हो गया है, फिर समझ ही कैसे सकोगी? लो, महल आ गया, अन्दर जाओ।"

"कविवर, आपको मुझसे बातें करना अच्छा नहीं लगता? आपका चित्त अस्वस्थ है, अपनी जन्म-भूमि में लगा हुआ है, आप दुखी होते हैं सो मुझे ठीक नहीं लगता।"

"नहीं विलास, ऐसा नहीं। जब तुम सामने रहती हो तो मैं सारा दुख भूल जाता हूँ।"

"तो मुझे आपसे कुछ पूछना है, विलासवती ने एक पेड़ के थाले पर बैठते हुए कहा।

"पूछो", खिन्न वदन रसनिधि ने हँसते हुए कहा।

१२

सहधर्माचार

"किन्तु, किसी से कहिएगा नहीं।"

"यहाँ मैं किससे कहने जाऊँगा?"

"यदि मेरी माँ को पता लग गया तो वे नाराज़ होंगी।"

"अगर ऐसी बात है, तो फिर पूछती ही क्यों हो?"

"विलास क्षण भर के लिए मौन रही फिर धीरे से बोली, "ऐसा कोई दूसरा नहीं है, जिससे पूछूँ।"

"अच्छा, क्या पूछना चाहती हो।"

"आपकी शादी हो चुकी।"

"हाँ।"

"विवाह हो जाने पर मुझे कैसे व्यवहार करना पड़ेगा।"

रसनिधि खिलखिला कर हँसा, "तुम क्या सोच रही हो?"

किशोरी कवि की हँसी का कारण नहीं जान सकी।

"शास्त्र में तो सहधर्माचार करने को कहा गया है।"

रसनिधि फिर हँसा, "तो बस ठीक है।"

"लेकिन सब ऐसा कहाँ करते हैं?"

हँसते-हँसते कवि ने कहा, "जिस तरह आदमी की जातियाँ भिन्न-भिन्न हैं उसी तरह सहधर्माचार की विधियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं।"

"सो किस तरह।"

"हमारी उज्जयिनी में एक लकड़हारा रहता है। वह सपत्नीक ताण्डव-सहधर्माचार करता है।"

"विलास चुपचाप देखती रही।"

"प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल तीनों एक दूसरे को मारते हैं।"

विलास हँस पड़ी, "फिर ?"

"फिर क्या ?"

"दूसरा उदाहरण एक ब्राह्मण का है।"

'सो क्या ?"

"उसका नाम है सरस्वती सहधर्माचार। वह और उसकी स्त्री प्रति दिन एक दूसरे को सात पीढ़ियों को कोसा करते हैं।"

"नहीं, आप यह केवल मनोरंजन की बात कह रहे हैं।"

"नहीं, ठीक कहता हूँ। लेकिन तुम्हें तो कई तरह के सहधर्माचार सुनने हैं न ?"

"हाँ।"

"तो तीसरे का नाम है स्वेच्छाचार धर्माचार।'

"वह क्या हुआ ?"

"जिसे जो ठीक जान पड़े, सो करे।"

"और क्या ? विवाहित होने पर जो धर्माचार किया जाय, वही सहधर्माचार है।"

"तो कुछ अच्छे भी सहधर्माचार हैं या सब ऐसे ही हैं।"

"हैं क्यों नहीं। इसके पश्चात् है स्वयंभू धर्माचार।"

"अर्थात् ?"

"एक पक्ष धर्म का आचरण करता है और दूसरा पक्ष उसकी कोई पर्वाह नहीं करता है।"

"यह तो बहुत बुरा है।"

"किन्तु अधिकांश लोगों को यही प्रिय है।"

"क्यों ?"

"अधिकतर स्त्री धर्माचरण करती है और पुरुष ·· ···।"

"हाँ, पुरुष क्या करता है ?"

"जो मन में न आता है।"

"यह कैसी नीचता है।"

"इसमें नीचता की कौन-सी बात है ? धर्म गाड़ी है, उसको एक खींचता है और दूसरा उसमें बैठा रहता है।"

"और ?"

"और क्या; एक है शुष्क धर्माचार।

"उसका क्या मतलब ?"

"स्त्री-पुरुष दोनों पुरानी लकीर पीटते चलते हैं लेकिन न उसमें रस होता है, न प्रेम, न आनन्द।"

"तो इससे क्या ?"

"यह भी निम्नकोटि का ही आचार है।"

"झूठ बात ! यह आचार श्रेष्ठ है।"

"विलासवती, आनन्द अथवा प्रेमरहित सहधर्माचार का क्या मतलब है, तुम जानती हो ?"

"जी ! हमारे महाराज और जक्कला देवी का आचार इसी कोटि का है।"

"तब तो उन दोनों जैसे अभागे और दुखी संसार में विरले ही होंगे।"

"तो सच्चा सहधर्माचार कौन-सा है ?"

"जहाँ परस्पर अखंड प्रेम हो, एक दूसरे के प्रति रसस्रोत बह रहा हो, रात-दिन एक दूसरे की आँखों में एक दूसरे के स्पर्श में आनन्द वास करता हो वहीं सच्चा सहधर्माचार रह सकता है।"

"आप तो सब बातें उल्टी ही करते हैं।"

विलास ने आकुल हो कर रसनिधि की ओर देखा, "नहीं, तुम्हें ही उल्टी शिक्षा मिली है।"

"तो, एक बात और पूँछ सकती हूँ।"

"क्यों नहीं ?"

"आपका अपनी पत्नी के प्रति जो आचरण है वह किस कोटि का है"

ऐसा पूछ कर विलासवती मन ही मन पछताने लगी। वह राज-कुमारी थी, अपनी आदत के अनुसार परिजनों से ऐसी बातें पूछने का अभ्यास था। परन्तु रसनिधि में एक प्रकार का असंभावित गौरव लक्षित हो रहा था। विलास ने सोचा, मेरा प्रश्न कहीं कवि को बुरा तो नहीं लगा।

"रसनिधि की दृष्टि गम्भीर हो गई, उसमें मधुरता आ गई।"

"विलासवती, मुझे तो एक ही सहधर्माचार प्रिय है।"

"कौन-सा?"

"वही अंतिम।"

कवि ने एक दीर्घ निःश्वास लिया। विलासवती रसनिधि की स्निग्ध मुखाकृति परखने लगी। कवि के मुँह पर उसे अवर्णनीय और अपरिचित भाव दीख पड़े।

"आपकी स्त्री का क्या नाम है?"

"उदयामती।"

"वाह! नाम तो बड़ा सुन्दर है।"

"कवि को ज़रा हँसी आ गई।"

"उन्होंने काव्यों का अनुशीलन किया है?"

"वह तो स्वयं कवि है।"

"ओह! फिर तो न जाने कैसी होंगी।"

"जैसी देवताओं को भी दुर्लभ हो।"

विलास क्षण भर के लिए मौन हो गई। कुछ सोचने के बाद बोली, "मुझे भी यह सब आप सिखा देंगे।"

कवि फिर हँस पड़ा।

"मैं कोई काव्य सुनना चाहती हूँ," विलास ने कहा।

"मृणालवती नाराज होंगी।"

"वे जान ही क्योंकर पाएँगी?"

"तो मेरी ओर से कोई बाधा नहीं। क्या सुनोगी।"

"माँ, आपसे उस दिन किस कवि की चर्चा कर रही थीं।"

"महाकवि भवभूति की।"

"उनका कौन-सा काव्य आपने पढ़ा है?"

"सारे ही पढ़े हैं। तुम कौन-सा सुनना चाहती हो।"

"माँ, 'मालती-माधव' का नाम ले रही थीं।" रसनिधि थोड़ा-सा झिझक कर बोला, "अच्छी बात है, तो कब सुनोगी?"

"समय निकालूँगी। फिर मैं आपके पास आ जाऊँगी।"

१३

लक्ष्मीदेवी का रण-भूमि में प्रवेश

रसनिधि ने खेद के मारे शिर झुका लिया। विलासवती को यह देख कर दुख हुआ, उसका हृदय द्रवित हो उठा। बेचारे कवि को कैसी तक़लीफ़ है! और स्त्री की भी कैसी दशा हो रही होगी?

ठीक मेरी जैसी। अवंतिका का एकान्त वास। पतिदेव के वियोग में बेचारी मर रही होगी। उसको त्याग का पाठ किसने पढ़ाया होगा? वह शायद ही सोचती होगी कि संसार मिथ्या है, माया है, प्रपंच है। मेरा विवाह हो जाय और सत्याश्रय दूर देश में कारावास का दंड भोगें तो मेरी क्या दशा हो?

विलास बहुत देर तक अपने दिल में यही सोचती रही। बेचारी मृदुल-हृदया कवयित्री उदयावती के दुख ने विलास के संयमी हृदय को भी दहला दिया। और उदया का प्राणवल्लभ भी कितना सुंदर, कितना विद्वान है! ऐसे पति के लिए कौन अभागी दुखी न होगी। विलास की अपनी बात तो निराली है परन्तु दूसरे की क्या दशा हो सकती है ऐसे ही विचार उसके हृदय में आ-जा रहे थे। इन विचारों में उसकी आँख लग नहीं रही थी। अन्त में उसने खिड़की खोल कर बाहर देखा।

रात्रि निस्तब्ध थी। वाटिका में चाँदनी छिटक रही थी। रसनिधि वहाँ टहलता हुआ अपने मित्र धनंजय से बातें कर रहा था। अचानक विलास की निगाह उसी ओर जा पड़ी। वह तन्मय हो कर देखने लगी, कल्पना करने लगी कि इस समय ये लोग क्या बात कर रहे होंगे। अकस्मात् नीचेवाला दरवाजा खुला और एक स्त्री बाहर

निकली। विलास विस्मित और स्तब्ध हो कर जहाँ की तहाँ खड़ी हो गई।

उसने अपनी माँ को तुरन्त पहचान लिया। वह पुकारना चाहती थी लेकिन डर के मारे उसका मुँह न खुला। यह साफ़ मालूम हो रहा था कि रात क़ाफ़ी बीत चुकी है और लक्ष्मीदेवी कवियों को सोने के लिए कहने जा रही हैं। विलास ने धीरे से जंगला बन्द कर दिया और सो जाने का प्रयत्न करने लगी।

लक्ष्मीदेवी होंठ पर होंठ रखे चिंतित-सी खड़ी थीं। महा-सामन्त तैलपराज के पास गए थे। वह उनकी राह देखते-देखते थक गई थी, फिर खिड़की से कवियों को देख कर नीचे चली आई थी।

वह केवल मिलने के ही लिए नहीं आई थी। पलकें चढ़ा कर, भौंहें तान कर, थोड़ी देर तक उसने कुछ सोचा था। वह एक निश्चय पर पहुँच चुकी थी। उसी निश्चय को पूर्ण करने के ही लिए वह बाहर निकली थी।

बरसों से संचित विविधि वृत्तियाँ इस समय केन्द्रित हो गई थीं। विविधि विचारों की माला से मन ने एक जप आरंभ कर दिया था। स्यूनराज की पटरानी ने रणांगण में प्रवेश किया। उसकी गति से धैर्य, वीरता और निश्चयात्मकता प्रकट हो रही थी।

वह ज़रा आगे बढ़ कर फिर रुक गई।

रसनिधि और धनंजय दोनों किसी के पैरों की आहट पा कर चौंक पड़े; चुपचाप ऊपर की ओर उन्होंने ताका।

"कविराज!" लक्ष्मी ने धीरे से कहा।

दोनों कवि एक दूसरे की ओर निहारने लगे।

धनंजय बोला, "माँ क्या आज्ञा है?"

लक्ष्मीदेवी ने चारों तरफ़ नज़र घुमाते हुए कहा, "अभी तक जाग रहे हो, सोए नहीं?"

"अपरिचित स्थान में नींद जल्दी नहीं आती," रसनिधि बोला।

लक्ष्मी देवी ने धीरे से कहा, "कविवर ! मुंजराज को वध करने का निश्चय किया गया है।"

"हैं !" दोनों जने बोल उठे।

"हाँ।"

दोनों कवियों ने लंबी साँस ली। रसनिधि के प्राण जलने लगे, होंठ फड़कने लगे, और धनंजय नतमस्तक हो गया।

"क्यों धनंजय, क्या सोच रहे हो ?"

"माँ, मेरा सूर्य अस्त हो गया।"

"नहीं, अभी देरी है।"

दोनों मौन रहे।

लक्ष्मीदेवी समीप सरक आई और फुसफुसा कर कहने लगी, "हे मुंज को छुड़ाने का साहस तुम लोगों में ?"

धनंजय घबड़ा कर पीछे हट गया। पर रसनिधि ने तीक्ष्णतापूर्वक ऊपर देखा और क्षण भर में लक्ष्मीदेवी के अन्तर्गत भावों को जान लिया। वह हँस पड़ी और बोली, "मैं तो परिहास कर रही थी।"

रसनिधि बोला, "आप हँसी कर रही थीं माँ ! लेकिन हमारी हार्दिक अभिलाषा है। क्या करें ? पराया देश ठहरा, पराये आदमी ठहरे, अपनी वेदना किससे कहें, हम तो बंदी हैं।"

"तुम बंदी कहाँ हो ?"

"हम नहीं हैं तो क्या हुआ ? परन्तु हमारा श्वास, हमारे प्राण, मयूरवाहिनी भगवती शारदा का प्यारा हमारा राजा कैसी दुर्दशा में है। क्या यह कम दुख की बात है ?"

"यह भी आज अखर रही है, यही बात कल भूल जाओगे।"

"कारागार का कलंक चिह्न माँ, क्या कभी भूलने की वस्तु है ? क्या वह कभी मिट सकता है ?"

लक्ष्मी का मुख फीका पड़ गया।

"आप स्वतंत्र हैं, सुखी हैं." एक-एक शब्द पर ज़ोर देते हुये रसनिधि ने फिर कहा।

रानी के होठों पर विषाद की रेखायें खिंच गईं। उसने पूछा, "तुम्हें क्या मालूम कि मैं सुखी हूँ?"

"आप तैलपराज की महारानी जक्कला देवी की बहन हैं, उनके महासामन्त की पत्नी हैं। आपको कहाँ पराधीनता का भोग करना पड़ा है? आपने कब कारागार में एकान्त वास किया है? जो आपको हमारे स्वामी पर दया आवे? क्या करें पराया देश ठहरा, कोई सहायक नहीं, नहीं तो..... ...।"

रसनिधि चुप हो गया।

"कहो न, नहीं तो क्या करते?"

"जो आपने कहा है, वही करते; मुंजराज को छुड़ाते।"

"रसनिधि, तैलपराज के पंजे से भला कोई निकल सकता है"

"हजार हाथों वाला सहस्रार्जुन ही जब पराजित हो गया, तो दो हाथ वाले इस तैलप का क्या पूछना।"

लक्ष्मीदेवी बातचीत के प्रसंग में हँसती भी जा रही थीं, फिर भी उनमें गंभीरता आ ही गई। उन्होंने कहा, "कविराज, यहाँ काव्य-रचना का काम नहीं है।"

"नहीं मात्ता जी, यहाँ तो कर्त्तव्य में काव्यों का साक्षात्कार करने का काम है।"

लक्ष्मीदेवी ने मुस्कुराते हुए कहा, "फिर तो करना ही चाहिए।"

"कठिनाई केवल यह है कि किसी जान-पहचान के किसी भी आदमी की सहायता हमें यहाँ प्राप्त नहीं ...क्या आपसे ऐसी आशा करें?" रसनिधि ने धीरे से पूछा।

लक्ष्मी ने रसनिधि का आशय समझ लिया। उसने कहा, "सहायता तो शंकर भगवान सदा ही करने को तैयार रहते हैं। यहाँ जो राजमहल है, उसके अंदर एक शिवाला है, उन शिव जी पर लोगों का बड़ा

विश्वास है। याद वहाँ जा कर मुंजराज उनको एक विल्वपत्र चढ़ा पायें, तो वह दूसरे ही क्षण गगन विहारी हो कर अवंतिका पहुँच जायं। ऐसा ही है उनका प्रताप।"

कवि इन शब्दों का अर्थ समझने के लिए नतमुख हो कर नीचे देखता रहा। पल भर के पश्चात् बोला, "बस यही न आपका विश्वास है, पर यह हो कैसे सकता है? भगवान शूलपाणि साधन जुटा दें, फावड़ा कुदाली भेज दें तब तो।"

"रसनिधि, तुम्हारी कल्पना-शक्ति गजब की है।"

"बिना उसके माँ, मैं कवि कैसे हो जाता? अच्छा, भगवान शंकर को प्रसन्न करने का कोई उपाय बताइये।"

"हृदय में श्रद्धा रखो।"

"हमारे लिए तो स्यून देश की महारानी ही श्रद्धा का अवतार हैं।" धनंजय बीच ही में बोल उठा, "यह श्रद्धा हमेशा फूले-फले।"

"रसनिधि, है वज्र जैसा हृदय?" लक्ष्मीदेवी ने भौंहें चढ़ा कर कहा।

"है।"

"तो इधर आवो।"

बिना बोले लक्ष्मी और रसनिधि एक दूसरे के शब्दों का तात्पर्य समझ गए। आगे-आगे लक्ष्मी और पीछे दोनों कवि, इस प्रकार तीनों जने महल के एक विजन भाग की ओर, चुपचाप, चलने लगे।

महल का एक हिस्सा पुराना पड़ गया था, उसका जीर्णोद्धार हो रहा था। लक्ष्मीदेवी उसी ओर गईं। आगे एक पेड़ के नीचे फावड़े कुदाली आदि रखे हुए थे। लक्ष्मी ने उंगली उठाई, इशारा से उन्हें दिखाया। रसनिधि सब कुछ समझ गया। शिर हिला कर स्वीकृति और सहमति की सूचना उसने दी।

वहाँ से थोड़ी दूर पर पेड़ों के बीच एक बावड़ी थी। लक्ष्मी दोनों कवियों को उसके पास ले गईं।

लक्ष्मी ने धीरे से कहना शुरू किया, "इस बावड़ी का गुप्त मार्ग राजमहल के नीचे तक गया है और जहाँ पर जा कर यह खतम होता है वहाँ से तीस ही हाथ की दूरी पर दूसरे सुरंग में...."

"मुं ..."

अधर पर तर्जनी रख कर लक्ष्मी ने रसनिधि को चुप रहने का संकेत किया। फिर जिस तरह अंधकार में छिपते हुये गये थे, उसी तरह सब वापस आये। उद्यान में पहुँच कर तीनों ने चैन की साँस ली।

"यही हमारे महल का शिवालय है। जानते हो, इन महादेव के बारे में क्या प्रसिद्ध है?"

"नहीं।"

"कहते हैं कि रोज रात को यह नगर के बाहर भुवनेश्वर महादेव के मंदिर में भैरव से मिलने जाया करते हैं।"

"कैसे?"

"इनका नन्दी बड़ा शक्तिशाली है। मंदिर से ग़ायब हो कर पाताल के रास्ते वह भुवनेश्वर के मंदिर में पहुँचता है।"

"अच्छा, यह बात है।"

"हाँ, भगवान शंकर को प्रसन्न करना चाहिए।"

आकांक्षा और विश्वासपूर्ण स्वर में रसनिधि ने कहा, "माँ, शिव भगवान हमारे ऊपर अवश्य ही प्रसन्न होंगे।"

"अच्छा, अब भगवान शंकर की बात समाप्त करो। महाराज आते ही होंगे, मैं चली।"

"अच्छा, माँ, आज से तुम्हीं हमारी कुलदेवी हो," कृतज्ञता के अतिरेक में गदगद हो कर रसनिधि बोला।

"तुम्हारी कुलदेवी?"

"मैंने भूल की, हमारी नहीं, अवन्तिनाथ की" जीभ को दाँतों तले दबा कर रसनिधि ने कहा।

"मैं अपने स्यूनराज की ही बनी रहूँ, तो बहुत है।"

१४

काठ का पिंजड़ा

मृणालवती को आज रात में नींद नहीं आई। वह सदा ही चिन्तारहित होकर सोया करती थी, लेकिन आज उसको एक नया अनुभव हो रहा था। उसने सो जाने के लिए बहुत कोशिश की, परन्तु सब व्यर्थ। वह ध्यान करने बैठी, उसमें भी मन नहीं लगा। मुंज के पाप-पुण्य का लेखा-जोखा करना ही उसे अपना परम कर्त्तव्य प्रतीत हुआ।

समय बीतने लगा। न उसे नींद ही आ रही थी, और न मुंज ही उसकी दृष्टि से ओझल हो रहा था। आततायी मुंज को कुचल कर उसके पापों का फल उसे भोगने देना चाहिए या दया करके उसे पुण्य पथ दिखाना चाहिए?—दोनों उपायों में से वह कोई निश्चय न कर सकी। उसे दुःख पहुँचा कर, यातना दे कर उसके पापों का प्रायश्चित कराने की इच्छा हुई; कभी उसकी आत्मा का उद्धार करने के लिए उसे निष्कलंक जीवन का पाठ पढ़ाने का मन हुआ। अन्तःकरण ने कुछ निश्चय नहीं किया और सुबह होने को आ गई।

उसने निर्णय को भी स्थगित कर दिया। मुंज को काठ के पिंजड़े में रखने की आज्ञा तो दी ही जा चुकी थी। अब यदि वह दुष्ट इस दंड से सीधा हो जाय तो किसी निर्णय पर पहुँचना आसान हो जायगा, मृणाल ने ऐसा सोचा। वह अपने मन में मुंज को बहुत बड़ा दुष्ट-बुद्धि वाला प्राणी समझ रही थी। और अपने भाई को तथा स्वयम् को अखण्ड प्रतापी, नीतिवान और न्याय-परायण समझ रही थी। उसको इस बात का पूर्ण विश्वास था कि तैलप की विजय अपनी व्यवहार-कुशलता और न्याय-परायणता से ही हुई है।

सूर्योदय हुआ। स्नान-ध्यान करके वह महल की अटारी पर आ

गयी। जक्कला तथा लक्ष्मीदेवी भी वहाँ आ पहुँची। कुचले जाते हुए पापियों को देखने में ही सत्य की विजय समझी जाती थी; इसलिए राजमहल के सभी नर-नारी इस अवसर पर एकत्रित हो रहे थे।

राजमहल-प्रांगण में लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई थी। महल की एक दीवार के पास ही बहुत बड़ा काठ का पिंजड़ा रखा हुआ था।

तैलपराज के बाहुबल से विवश हो कर, बारी-बारी से कई राजा इस पिंजड़े में अपने पाप का प्रायश्चित करने आए।

प्रकाश में, उपेक्षा-पूर्ण हँसी हँसने वाले प्रजाजनों के सामने सारा दिन बिताना बड़े-बड़े अहंकारियों का भी अहंकार दूर कर देने वाला होता है ऐसा अनुभव था। जो कभी मामूली आदमी के सम्पर्क में भी नहीं आए थे, उनके पास अब सभी तरह के आदमी आते, उनका उपहास करते, उन पर थूक भी देते, ढेले मारते, व्यंग वाणों से उनको दुर्स्थिति का भान कराते। जो सिंहासन अथवा अंबारी के अतिरिक्त छत्र और चँवर के आडंबर बिना कभी बैठते ही न थे, वे ही अब विवश हो कर खड़े रहते। थक कर पिंजड़े में ही इन्हें बैठ जाना या सो जाना होता।

दंड की यह प्रणाली ऐसी थी कि बड़े से बड़ों का भी मान भंग कर देती; इन्द्र की भी कान्ति इससे फीकी हो जाती, कर्ण जैसे दानी भी इसके चलते दीन बन जाते और मृत्यु की याचना करते। दुर्दशा का ऐसा अनुभव इतना कटुतम होता कि कोई भी अपनी जीभ काट कर शिर पटक कर मृत्यु की शान्ति पाना चाहता था और, ऐसी निष्फल चेष्टाओं से, बन्दी पर लोग हँसते, तो वह दुखी होता और आहवमल्ल की कीर्त्ति दसों दिशाओं में छा जाती।

मृणाल की विवेकशक्ति जाग्रत थी, उसे विश्वास था कि इस पिंजड़े में यदि मुंज का गर्व गलित होगा तभी सत्य की विजय होगी।

दर्शनार्थियों की भीड़ बहुत बढ़ गई थी, अस्तु प्रहरी बड़ी मुश्किल से उनको पिंजड़े से दूर रखने में समर्थ हो रहे थे।

सभी एकटक देख रहे थे। मृणाल के अचल हृदय पर फिर अधीरता का आघात होने लगा; महल के दरवाज़े से चार सैनिक, मुंज के हाथों को पीठ पीछे बाँध कर उसे पिंजड़े में बंद करने के लिए लाए।

मुंज के मुख पर वही शांति, वही गौरव था, आँखों में वही तेज और वही हास्य था, उसके विराट् देह पर वही अकंपता थी। उसने बड़े शौक से आप ही पिंजड़े के अंदर पैर रखे, मानों हाथी पर सवार हो रहा है। ज़रा हँस कर उसने चारों ओर देखा।

जब वह आया तो भीड़ ने कुछ मसखरी की लेकिन उसका स्वरूप, उसका शरीर, और हास्य देख कर सभी स्वतः शांत होने लगे। जो उसे पकड़ लाये थे, उन चार सैनिकों में से एक से न रहा गया। उसने ताना मारा, "कहो पृथ्वी वल्लभ ख़ुश तो हो?"

मुंज ने मुड़ कर उसको देखा और मुस्करा दिया। फिर स्तंभ समान सबल अपना पैर उठा कर उस सैनिक को ऐसी लात जमायी कि वह पत्थर की तरह लुढ़क कर दूर जा पड़ा।

"हाँ भाई, तुझे देख कर विशेष ख़ुशी हुई" मुंज ने ठहाका मार कर कहा।

लोग लगे हँसने, खिलखिला कर तालियाँ पीटने। निराधार पड़े हुए उस सैनिक का उपहास होने लगा। अटारी पर खड़ी हुई महिलाओं से भी हँसी नहीं रोकी जा सकी। दूसरे सैनिकों ने शीघ्र ही पिंजड़े से निकल कर द्वार बंद कर दिया।

उस अपमानित सैनिक को जो अभी तक बेहोश-सा पड़ा था, तीनों सैनिकों ने मुश्किल से खड़ा किया। उसका कराहना सुन कर सभी हँस रहे थे, मुंज भी।

जब उसे खड़ा किया गया, तो पिंजड़े में से मुंज ने पूछा, "भाई, अब तो ख़ुश हो?"

लोगों को फिर हँसी आ गई, वे खिलखिलाने लगे। मुंज के प्रति

जो द्वेष-भाव था उसे भी भूल गए और उसकी इस विनोदमय प्रकृति से प्रसन्न हो गए।

इस खिलवाड़ से मुंज को स्वयं भी हँसी आ रही थी। उसने अटारी पर निगाह डाली। मृणालवती की ओर देखा, सिर झुका कर उसे नमस्कार किया।

जक्कला मुस्कराई भर, पर लक्ष्मी अपनी हँसी न रोक सकी। सिर्फ मृणाल हाथ मल रही थी। उसने सोचा इस पापी के हृदय में थोड़ी भी खिन्नता नहीं दीखती। इसकी महिमा अखंड है, यह ज्यों का त्यों अडिग है। क्या यह आदमी धूल चाटता हुआ नज़र नहीं आ सकता?

पिंजड़े के आस-पास अभी भी भीड़ खड़ी थी। मुंज ने उधर देखा और विनोद से कहा, "अरे यह कर क्या रहे हो? तुम लोगों को लज्जा नहीं आती? तुम्हारा राजा आज अवन्तिनाथ को पकड़ लाया है और फिर तुम ऐसे सादे कपड़े पहने हुए बुद्धू बन कर खड़े हो! जाओ, जरा छैले-छबीले बन कर आओ। कहाँ गईं तैलंगण की सुंदरियाँ? विजय का उत्सव कहीं स्त्रियों के बिना मनाया जाता है! उसमें राग चाहिए, रंग चाहिए, भोग चाहिए, विलास चाहिए।"

पास जो आदमी खड़े, थे, उन्हें फिर हँसी आ गई। जरा दूर पर एक छोटी-सी लड़की खड़ी थी, मुंज ने उसको इशारा किया—इधर आओ, तुमको गाना आता है?

"गाना?"

"पगली, यदि यह अवंतिका होती, तो तुम जैसी बालिकाएँ गाती बजाती, नाचतीं। अच्छा, तुझे नाचना आता है?"

"नहीं।"

"धत्' कुछ बजाना भी आता है?"

"नहीं।"

"कैसी हो तुम ! बेचारा तैलप जीत कर आया है, और तू उसे गा-बजा कर बधाई भी नहीं देती ? अच्छा आओ, मैं तुम्हें सिखाऊँ। संस्कृत जानती हो ?"

"जी नहीं।"

"अच्छा, मैं सिखाता हूँ। देखो, मुझे तुम्हारा तेलगिणी (तेलगू) आती है या नहीं।"

"तैलप नृपति नगरी सदा,
रस गान तान विहीन है।"

"बता, ठीक है या नहीं !"—मुंज नीचे झुक गया और उसका स्वर स्नेहसिक्त हो उठा।

बेचारी लड़की शरमा गई, उसकी आँखें नीचे देख रही थीं। लोग हँसने लगे।

"बोल बोल, घबड़ाती क्यों है ? देख मैं गाता हूं।"

लड़की ने ऊपर की ओर देखा। इतना मीठा स्वर, ऐसा प्रतापी मुख, ऐसी श्रद्धा-जात और ऐसी आकर्षक दृष्टि देख कर उसकी घबराहट दूर हो गई। वह मुंज के साथ स्वर मिला कर धीरे से गाने लगी—

"तैलप नृपति नगरी सदा ·····

मुंज ने कहा—शाबाश ! गाओ, गाओ।

रस गान तान विहीन है।"

बालिका ने गाया, लोगों ने भी स्वर-संधान किया। स्वर ऊँचा करके मंज दूसरा चरण गाने लगा—

"पद पकड़ पृथ्वीनाथ को,
रक्खे हुए वह दीन है।"

मुंज की सुसंस्कृत, सरस और उच्च स्वर की प्रतिध्वनि शांत हो गई। लोगों के दिल में फिर घबराहट छा गई, उनकी भयपूर्ण आँखें, ऊपर अटारी में मृणालवती की ओर फिर गईं।

मुंज ने मनोरंजक ढंग से पूछा—"क्यों, मृणालवती से डर रहे हो ! डरने की क्या बात है ! उन्होंने भी यह बात मंजूर कर ली है।"

आखिरी शब्द मुंज ने इस तरह कहे कि मृणाल उन्हें सुन लें। मुंज का मीठा और मुस्कान भरा स्वर आस-पास फैल गया। मृणाल के क्रोध का तो पारावार ही न रहा। उसकी आँखों में बिजली-सी कौंध गई। उसका अंतःकरण चंचल हो उठा। अपनी अशांति को छिपाने के लिए वह तुरन्त ही वहाँ से उठ कर चली गई।

अटारी पर अशांति-सी छा गई। जक्कला देवी वहाँ से चली गई और दासियाँ भी। केवल लक्ष्मी देवी प्रसन्न वदन बैठी रही।

मुंज फिर उस बालिका की ओर घूमा—हाँ बच्ची, पूरा तो करो !

"तैलप नृपति नगरी सदा रस गान-गीत विहीन है,
पद पकड़ पृथ्वीनाथ को रक्खे हुए वह दीन है।"

'बोलो, बोलो। गाओ, गाओ।"

कई आदमियों ने डरते-डरते गाया।

इतने में राजमहल से पच्चीस-तीस सशस्त्र सिपाही आए और लोगों को तितर-बितर करने के लिए उन पर टूट पड़े।

लोग अपना जी-जान ले कर भागे। मुंज पिंजड़े के अन्दर खड़ा खड़ा मुस्कराता रहा। सामने अटारी पर लक्ष्मी ने उस पर अपनी मुस्कान का प्रतिबिंब डाला।

१५

माधव का संयम

दूसरे दिन प्रातःकाल रसनिधि उठा। स्नान-ध्यान करके शिव-मूर्ति पर बिल्वपत्र चढ़ाने के लिये चल दिया, क्योंकि लक्ष्मी देवी से भगवान् शंकर की आराधन का प्रभाव वह सुन ही चुका था।

वहाँ विलास ध्यानमग्न बैठी थी। रसनिधि थोड़ी देर के लिए खड़ा रहा। वह कोमल लावण्यवती किशोरी पद्मासन लगाए बैठी थी और उस आसन को आकर्षक बना रही थी कि जिस पर अ-रसिक वृद्धों को ही बैठना शोभा देता है। विलास की बड़ी-बड़ी आँखों की छटा उसके अंगों की स्फुट किन्तु अनुपम रेखाएँ—यह सब कुछ वह कवि की निगाह से देखने लगा, और देखते-देखते उसका हृदय व्याकुल हो उठा। एक लता थी, जो उस वैराग्य की जाज्वल्यमान लपटों से मुरझा रही थी। उसे रस का सिंचन करके हरी-भरी बनाने के लिए कवि का हृदय छटपटाने लगा।

उसने एक नजर नंदी पर डाली। पास जा कर शिवलिंग पर बिल्वपत्र चढ़ा आया और द्वार के आगे जाकर प्रतीक्षा करने लगा कि विलास ध्यान से कब मुक्त होती है।

इसी समय किसी की आहट सुनाई पड़ी। रसनिधि ने घूम कर देखा तो सत्याश्रय को पाया। जैसे बिल्वपत्र चढ़ा कर वापिस लौटता हो ऐसा अभिनय करता हुआ वह सीढ़ियों पर से नीचे उतरने लगा।

कुमार ने भृकुटी तान कर कठोर स्वर में पूछा, "कौन?"

"मैं अवन्तिनाथ का कवि हूँ।"

"जिन्हें महासामंत छुड़वा कर ले आए हैं?"

इस अपमानपूर्ण प्रश्न से आहत हो कर भी स्थिर दृष्टि से कवि देखता रहा। उसने कहा, "हाँ।"

"यहाँ क्यों आए हो?"

"शङ्कर जी के दर्शन के लिए।"

रसनिधि का स्वर उद्धत हो गया।

"तुम्हारे लिए नगर में अनेक मंदिर हैं, इसमें आने की किसी को आज्ञा नहीं है।"

"शिवालय सदा सब के लिए होता है, हमारे यहाँ तो ऐसा ही नियम है, यहाँ का पता नहीं।"

अधिकारपूर्ण दृष्टि से कुमार सत्याश्रय ने देखा। ऐसे मामूली आदमी से वह क्यों उलझे? उसने केवल यही कहा, 'अच्छा अब तो पता लगा न?"

रसनिधि के कुछ कहने से पहले ही राजकुमार वहाँ से चला गया। होंठ चबाते हुए कवि थोड़ी देर शून्य दृष्टि देखता रहा। उसको ऐसा गुस्सा आ रहा था जैसा सरस्वती के किसी वरपुत्र के लिए उचित नहीं।

वह मंदिर के पीछे जा कर खड़ा हो गया। थोड़ी देर में सत्याश्रय मंदिर के अहाते से निकल कर राजमहल की ओर चला गया, तो रसनिधि फिर मंदिर में आ गया। विलास महादेव की पूजा कर रही थी।

"क्यों विलासवती, क्या कर रही हो?" रसनिधि ने पूछा।

"ध्यान कर रही थी, अभी निबट चुकी हूँ।"

"ऐसे सुन्दर प्रभात में तुम्हें यहाँ पर बंदी-जीवन बिताना भला कैसे अच्छा लगता है?"

"बंदी होना? क्या कहा, मैं तो समझी नहीं। बिना ध्यान किए कैसे चित्तवृत्ति का निरोध होगा?"

"आखिर चित्तवृत्ति का निरोध आवश्यक क्यों है?"

"यही देखिए न, उदयावती के बिना आपको कितनी तकलीफ हो

रही है। यदि चित्तवृत्ति का निरोध किया जाय, तो ऐसी तकलीफ न उठानी पड़े।"

कवि को हँसी आ गई, "मालूम होता है, उदया तुम्हारे मानस-पट पर अंकित हो गई है?"

"हाँ, रात भर उसके और उस नाटक के सपने ही मुझे आते रहे।"

"यही तुम्हारा निरोध है? यही ध्यान है?"

विलास ने हंसते हुए यह मंजूर किया कि उसमें सचमुच कुछ विकार आ गया है लेकिन वह तो अभी कच्ची उमर की है।

"भगवान् न करें तुम पक्की हो जाओ।"

विलासवती ने चुपचाप शिव जी पर फूल चढ़ाए और खड़ी हो गई।

"अब कहाँ जाओगी?"

"जाती हूँ मृणाल बहिन को प्रणाम करने।"

"शेर पिंजड़े में बंद किया जाने वाला है, वह यही देखने गई हैं।"

"तो क्या करूँ? आप अपना वह नाटक ही सुनाइए। कहीं कोई काम तो नहीं है?"

रसनिधि ने मुस्कराते हुए कहा "नहीं, क्या करोगी नाटक सुन कर? उसमें रूखी बात नहीं, न वैराग्य है और न संयम और न चित्तवृत्ति का निरोध; यह सब कुछ नहीं। उसमें तो निष्कलंक पवित्रात्मा बालकों की प्रेमकथा है। वे एक दूसरे को जान से भी अधिक प्यार करते थे। एक दूसरे को सामने देखते रहने में ही मोक्ष की प्राप्त मानते थे। उनके हृदय में त्याग का अंधकार नहीं था, चित्तवृत्तियों पर व्रतों और उपवासों का अंकुश नहीं था। तुम उनकी कथा सुनकर क्या करोगी?"

"माँ ने उसे सुना है, तो मैं क्यों न सुनूँगी?"

कवि ने स्निग्ध दृष्टि से किशोरी की ओर देखा, "तो सुनो। विदर्भराज के मंत्री का नाम देवरात था, उसका पुत्र माधव विद्योपार्जन के लिए पद्मावती नगरी में आया, वहाँ अकस्मात् मदनोद्यान में मंत्री भूरिवसु की लड़की, मालती, को देख कर वह प्रेमोन्मत्त हो गया।

"प्रमोन्मत्त ?"

"हाँ। तुम्हारे शब्दों में कहा जाय, तो उसने एक तरह के संयम का अनुभव किया।"

"सो कैसे ?"

"उसने मालती पर अपनी चित्तवृत्ति का निरोध किया। उसके लिए एकांत ध्यान किया और उसे देख कर वह अपना स्वरूप भूल गया। यही समाधि है। धारणा, ध्यान और अपने स्वरूप की विस्मृति यह तीनों बातें एक जगह मिल जायँ तो वही संयम कहलाता है।"

विलास की हँसी रोके न रुकती थी, "वाह क्या कहना है, उसके संयम का !"

"तुमको जिस बात का अनुभव करने में वर्षों लग जाएँगे, उसी का अनुभव उसने पलभर में कर लिया।"

"फिर ?"

"फिर क्या ? मालती के बिना उससे रहा नहीं गया। अधीर हो कर उसने एक मित्र से अपनी पीड़ा सुनाई।"....

"क्या सुनाई ?"

"उसे देख कर मेरा हृदय विस्मय-विमुग्ध हो गया है, भावशून्य बन गया है, आनन्द से विकसित हो गया है, जैसे अमृत के झरने में नहा लिया हो। लेकिन उसके जाते ही मेरा हृदय एक असंभावित अग्नि में धू-धू कर जलने लगा है विवेकहीन हो गया है"—माधव ने यही कहा था अपने मित्र से।

"बुरी गत हुई बेचारे की।"

कवि ने कहना जारी रखा, "इतना ही नहीं, विवेक के विनष्ट होने से उसका मोह बढ़ गया। मोह के विकार ने माधव को ऐसा तंग किया, जिसकी सीमा नहीं बतायी जा सकती, जन्म-जन्मान्तरों में भी जिसका अनुभव नहीं हो सकता। बेचारा भ्रान्तचित्त हो गया। आँखों में आँसू भर कर मित्र मकरंद से उसने कहा"...

"क्या कहा !"

"मित्र मकरंद, मुझे सामने पड़ी हुई भी चीज़ दिखलाई नहीं देती। सरोवर का शीतल जल और चन्द्रमा की अमृतमयी किरणें भी मेरा ताप मिटा नहीं पातीं। किसी काम में मन नहीं लगता, चित्त उद्भ्रान्त रहता है, न जाने क्या क्या देखता रहता है।"

कवि केवल कथा ही नहीं कह रहा था; अपनी सुधबुध को खो कर भावों का अनुभव करता हुआ प्रतीत हो रहा था। विलासवती को महाराज तैलप के शिवालय को और नीरस-मान्यखेट को वह भूल-सा गया; उसकी आँखों में एक नया ही तेज छा गया। धीमी आवाज़ में, महाकवि भवभूति के ही शब्दों में वह अपना मनोभाव प्रकट करने लगा—

'संसार में चन्द्रकला है···और भी अनेक विजयिनी वस्तुएँ हैं, जो स्वतः मधुर हैं, और हृदय को आह्लाद देती हैं। परन्तु जब मेरी विलोचन चन्द्रिका मेरी दृष्टि में आई, मेरे जीवन का महोत्सव तभी हुआ। ऐसा महोत्सव रचनेवाली को भला कौन भूलेगा ! बेचारे माधव का क्या अपराध था, वह तो यहाँ-वहाँ, आगे-पीछे और बाहर-भीतर, दसों दिशाओं में मालती को ही देखने लगा।"

कवि क्षण भर के लिए मौन हो गया। उसने दीर्घ श्वास लिया। बोलते-बोलते उसका हृदय द्रवित हो गया था। निश्वास छोड़ कर उसने कहा, "जिसने इस वस्तु का अनुभव नहीं किया, वह क्या समझेगा प्रेम-समाधि को !"

विलास शून्य दृष्टि से देखती रही। कवि के शब्दों और भावों से उसकी आँखों में आँसू भर आए थे।

रसनिधि ने भी धोती के छोर से अपनी आँखें पोंछी और कहा, "विलास", यह इस नाटक के पहले अंक की कथा है।"

"कविवर, आपको भी आंसू आ गए !"

"क्यों न आए ? मैं भी तो माधव की दशा भुगत रहा हूँ। कहाँ मैं और कहाँ मेरी उदया ?"

पल भर तक दोनों चुपचाप ही खड़े रहे।

आश्वासन देने की इच्छा से विलासवती ने सहज और स्नेह-सिक्त स्वर में कहा, "नाटक का शेष अंश अब फिर सुनाइएगा।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा" रसनिधि ने पुनः लंबी साँस ली।

स्निग्ध और सिक्त आँखों से विलास देख रही थी। कुछ देर चुप रहने के बाद कवि ने कहा, "तो चलना चाहिए ? मुझे आज्ञा दो।"

"अच्छा।"

चुपचाप दोनों अपनी-अपनी जगह की ओर चल दिए।

१६

फिर एक बार

मृणालवती का ग़ुस्सा संयम की सीमा लाँघ कर आगे बढ़ गया। जब तब ध्यान, धारणा, और पारायण से भी वह न रुक सका, पृथ्वी वल्लभ का विजयी स्वरूप उसकी आँखों में नाचने लगा—सभी पर अधिकार जमाने लगा। शान्त समतल और सूखी मरुभूमि में फिर सागर लहराने लगा।

वह मुंज को दुर्दशा का स्वाद चखाने गई थी, लेकिन स्वयम् अपमानित होकर लौटी। शंका हुई—विजेता कौन ? मैं या पृथ्वी वल्लभ ? मृणाल मुंज के विषय में इस उपाधि से कभी बातचीत नहीं करती थी, किन्तु अब किसी अज्ञात कारण से उसे भान होने लगा कि यह नाम मुंज ही का है। ऐसा भान होते ही उसकी विकलता फिर बढ़ने लगी।

एक धुँधला-सा विचार उठा कि यह आदमी कैसा अद्भुत और बेजोड़ है ! बुद्धि की सहायता से मृणाल ने इस विचार को दबा दिया। भ्रम को दूर हटाने का प्रयत्न करने लगी। क्या खूबी है उसमें ? जैसे और आदमी हैं, वैसे ही तो वह भी मामूली आदमी है। हज़ार बार उसने मन ही मन यह बात दुहराई परन्तु अंतस्तल से अलक्षित प्रतिध्वनि उठ रही थी—क्या वह भी कोई मामूली आदमी है ?

दोपहर हुआ। भगवान् भुवनभास्कर के प्रताप से डर कर नगर-निवासी अपने-अपने मकान में जा बैठे, पशु-पक्षियों ने भी छाँह की शरण ली, रास्ते सूने हो गए, वीरान मैदान की-सी शान्ति नगर में छा गई।

मृणाल यद्यपि एकान्त में थी, उसके आसपास निर्जनता का वायु-मण्डल था तो भी विचित्र विचारों की घनी बस्ती में वह आकुल और

दुखित हो कर बैठी थी। उसका महान् मस्तिष्क इस व्याकुलता को दूर करने के लिए और मुंज की दृढ़ता को चूर-चूर करने के लिए नए-नए प्रयोगों का आविष्कार करने लगा। अविष्कार तो बहुत किए, किन्तु उपाय एक भी न सूझा।

उसने खिड़की खोली। पथ जनशून्य था। गर्म हवा चल रही थी। मृणाल की सहनशीलता और निर्द्वन्द्व भाव के सामने इस ताप की कोई बिसात नहीं थी। तथापि उसके हृदय में एक अलक्षित आग धू-धू करके जल उठी। जंगल में जब दावानल प्रज्वलित होता है तो उसके पहले पत्तों से धुआँ उठने लगता है। उसी तरह इस अग्नि ने मृणाल के हृदय को झुलसाना आरम्भ कर दिया। आग अच्छी तरह अभी प्रज्वलित नहीं हुई थी, परन्तु अन्दर ही अन्दर धुंआ मँडरा रहा था।

थोड़ी दूर पर, एक अटारी पर कोई स्त्री अपने कपड़े सुखा रही थी। ग्रीष्म के प्रताप से जनशून्य बना हुआ नगर श्मशान जैसा शान्त था। उस नीरवता में वह स्त्री गा रही थी। मृणाल को सुनाई दिया—

"तैलप नृपति नगरी सदा·····"

उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। वह क्रोध की भयानक ज्वाला को क़ाबू में करती हुई काँप उठी। उसके दिल में आया कि किसी धनुर्धारी सैनिक को बुला कर उस स्त्री को तीर का निशाना बना दिया जाए; लेकिन फिर कुछ सोच कर इस ख्याल को उसने दबा दिया। उसे स्वयम् ही यह बात मूर्खतापूर्ण प्रतीत हुई। इन सारी अशान्तियों का आदि कारण तो मुंज था, भोली-भाली प्रजा का क्या अपराध है।

वह क्रोध को रोक कर फिर सोचने लगी—किस तरह मुंज का मान भंग किया जाय? काठ का पिंजड़ा तो मुंज के लिए सिंहासन बन गया, उससे मुंज की महत्ता और भी बढ़ गई है। तैलंगण की प्रजा उसकी बोली सुन कर अपने कर्त्तव्य को भी भूले जा रही है। इसका क्या प्रतीकार हो?

वह दूसरी अटारी पर गई। वहाँ से पिंजड़ा दीख रहा था। सैनिक-गण पिंजड़े को चारों ओर से घेरे हुए पहरा दे रहे थे।

इस गर्मी में, इस ताप में, इस स्थिति में भी मुंज जैसे का तैसा खड़ा था। दो-तीन सैनिकों से उसकी बात चल रही थी। उसका मुख हास्यपूर्ण था, उसकी आँखें विकसित थीं; उसका गौरव अखंड था। तनी हुई उसकी देह से निर्मल और प्रभावोत्पादक तेज फैल रहा था।

अटारी की खिड़की खुली, मुंज ने ऊपर की ओर देखा। उसने मृणाल की ओर हास्य का एक भयंकर बाण छोड़ा। क्रोध के मारे छत पर पैर पटकती हुई वह अटारी से उतर आई और ज़ोर से दरवाज़ा बन्द कर लिया।

"कोई है!" विकराल स्वर से मृणाल ने आवाज़ दी।

"क्या आज्ञा है?" एक दासी आकर खड़ी हो गई।

"नायक रणमल्ल है!"

"जी, देखे आती हूँ।"

कुछ देर मृणालवती इधर-उधर चहलक़दमी करती रही, फिर नायक आ पहुँचा। कठोरता से मृणाल ने कहा, "रणमल्ल!"

उसके कर्कश स्वर से नायक थरथर काँपने लगा और हाथ जोड़ कर बोला, "क्या आज्ञा है देवी!"

"तुम्हारे सैनिक ऐसा पहरा देते हैं?"

"कैसा?"....

मृणाल ऊपर गई और अटारी का द्वार खोल कर नायक को वह पिंजड़ा दिखाया, "देखो! वह पहरा दे रहा है, या खेल कर रहा है? अपने सैनिकों से कह दो अगर किसी ने मुंज से बातचीत की तो उसको प्राणदंड मिलेगा।"

"जो आज्ञा।"—नायक वापस लौट गया।

जैसे-जैसे साँझ होने लगी, वैसे मृणाल के मन में शान्ति समाती गई और यह क्रोध उसको निष्फल प्रतीत होने लगा। मुंज पापी था

पर फिर भी अधिक दयापात्र मालूम पड़ने लगा। ऐसे पतित व्यक्ति पर नाराज़ होना उसे अपना ही भ्रम मालूम होने लगा। दुर्दशाग्रस्त आदमी पर क्रोध करना, उसे तड़पाना मृणाल को अपने जप-नियम के विरुद्ध प्रतीत हुआ। मुंज एकदम बुरा तो नहीं है। हर एक आदमी के हृदय में सद्गुण का कोई न कोई स्तंभ होता ही है। उसी को आधार बना कर यदि फिर रचना की जाय, तो अवश्य ही वह हृदय निष्कलंक बन जाय। मृणाल को अपनी भूल पर पश्चात्ताप हुआ। अगर उसने मुंज को और बातें करने का अवसर दिया होता, तो ज़रूर ही उसमें छिपे हुए सद्गुण का स्तंभ दिखाई दे जाता। इस विचारमाला के मनकों को गिनती हुई वह अपनी अपूर्णता का भान करती रही और पूर्णता प्राप्त करने का उसका जो पूर्व विश्वास था, वह नष्ट होने लगा।

संध्या समय तैलपराज आया।

'बहिन, आज तुम्हारे दर्शन नहीं हुए?"

मृणाल संकोच में पड़ गई। जीवन में यह पहला अवसर था जब कि वह निरुत्तर हो रही थी।

"तुम्हारी कीर्त्ति का विचार कर रही थी।"

"अब कौन-सा विचार बाक़ी रहा है?"

"मुंज का गर्व अभी तक दलित नहीं हुआ; इसलिए सब कुछ शेष है।"

तैलप की छोटी-छोटी आँखों में लाली छा गई, "हाँ, सुना है, वह पिंजड़े में भी अपनी बेशरमी का प्रदर्शन करने में नहीं हिचकता।"

"हाँ, मैं भी उसका गर्व खंडित करने का उपाय सोच रही हूँ।"

"अब सोचने की ज़रूरत नहीं। कल राजसभा में उसे बुलाया जायगा, वहीं मैं भली भाँति उसके गर्व को चूरचूर कर दूंगा।"

"ठीक है। घबराना मत। मैं उससे उसके दुष्कर्म का पूरा-पूरा प्रायश्चित्त कराऊँगी।"

तैलप ने कहा, "बहिन ! तुम्हारे प्रभाव पर हमें विश्वास है, श्रद्धा है। और कल राजसभा में जब उससे अपने पैर धुलवाऊँगा, तो वह सीधा हो जायगा।"

"भाई, सावधानी से काम लेना। वह अन्य राजाओं की तरह नहीं है, उसे सीधा करना बड़ा कठिन काम है।"

"बहिन, जो तुम्हारी आशीष और तुम्हारी अनुमति चाहिए फिर किसकी मजाल है मेरे सामने खड़ा हो जाय ?"

'मैं अभी उससे मिलने जा रही हूँ।"

"क्यों ?"

"उसके कलंकित जीवन का स्वयं उसी को भान करा देना है। मेरी कीर्ति पर उसने कितनी कीचड़ उछाली है, मुझ पर कैसे-कैसे काव्य और नाटक रचवाएँ हैं, इन सब का हिसाब चुकाना है।"

"तो उसका बध अभी नहीं कराया जायगा ?"

"नहीं भाई, इससे हमारी विजय क्षणिक होगी। जैसे-जैसे वह तड़पेगा, जैसे-जैसे उसका मान भंग होगा, तैसे-तैसे हमारी कीर्ति बढ़ती जायगी। ऐसे शत्रु को वश में करना, उसे यथार्थतः जीतना, चक्रवर्त्तियों के भाग्य में नहीं लिखा होता।"

"सच है। तो आज तुम उससे जा कर मिलो। कल राजसभा है फिर देखते हैं, वह क्या करता है ? पिंजड़े के निकट तुमने सैनिकों को भेज दिया ?"

"भेज दिया। तुमने देखा नहीं ? प्रजाजनों के समक्ष वह तुम्हारी हँसी उड़ा रहा था।"

"हाँ।"

"देवी ने मुझसे कहा था। इच्छा तो हुई, उसकी जीभ निकलवा लूँ, पर तुम्हारी असम्मति की आशंका के कारण मैंने वह विचार छोड़ दिया। खैर, कोई नया समाचार हो, तो रात को कहला भेजना।"

"ज़रूर।"

तैलप ने बहिन को साष्टांग प्रणाम किया और उसने आशीर्वाद दिए।

× × ×

मृणालवती के हृदय में कुछ चुभता हुआ-सा मालूम पड़ा, जैसे किसी ज़हरीले बिच्छू ने डंक मार दिया हो। उसने सोचा—क्या उसका अंतःकरण कलुषित हो गया है? उसने हृदय खोल कर वार्त्तालाप क्यों नहीं किया। क्यों उसने अपने तर्क-वितर्कों को दबा कर तैलप से झूठ-मूठ की बातें कीं?

लेकिन इस तरह मृणाल को अपने और अपने भाई के प्रति जो अटल श्रद्धा दूर हो चली थी वह पुनः दृढ़ हो गई। मुंज के झूठे आडम्बर से वह भ्रम में पड़ गई थी; निरावलंब बन्दी की निर्लज्ज बातों से वह हार खा चुकी थी। उसको खयाल आया—मृणाल, तू कितनी मूढ़ है कि इस प्रकार भ्रांत हो गई, पराजित हो गई। तुम्हारे निष्कलंक हृदय को क्या यह शोभा देता है? विचार-प्रवाह दूसरी ओर बह गया, हृदय शांत हुआ, अपने मन की लुप्त प्रायः स्वस्थता बटोर कर वह मुंज से मिलने के लिये तैयार हुई। उसे आदमी के प्रत्येक विचार से परिचित होना, उसके कर्त्तव्य-कारण का विश्लेषण करना, उसके जटिल जीवन-जाल की गुत्थियों को सुलझाना मृणाल जैसी तापसी अथवा नीति-निपुण महिला के अतिरिक्त और किसके सामर्थ्य की बात थी! इस काम से पीछे हटना मृणाल को अपनी कायरता प्रतीत हुई। तैलप भले अपने बल-वीर्य के प्रताप से मुंज के हाथों पाद-प्रक्षालन करवाए। परन्तु मृणाल ऐसा नहीं करेगी, वह अपने पवित्र जीवन की प्रबल सत्ता के द्वारा, उस अधम के पश्चात्ताप विगलित नयन-नीर से अपने पैरों को धुलवाएगी।

मृणाल ने रणमल्ल को बुला कर आदेश दिया कि मुंज को पिंजड़े से निकाल कर वह गुप्त कारागृह में ले जाय। आज्ञा-पालन करके जब नायक लौटा, तो मृणाल उसे साथ ले कर मुंज से मिलने गई।

१७

कौन किसको सिखाए ?

कठोरता के मारे सिकुड़ी हुई भौंहें मृणाल की नियमित तथा धीर गति उसके आंतरिक भावों का परिचय दे रही थीं। फिर भी हृदय में पहले जैसी स्वस्थता न थी और न थी पहले जैसी अडिग श्रद्धा।

पीछे आती हुई राज्य-विधाता मृणाल की भयंकर मुखमुद्रा देख कर मसालची काँपने लगा; गुप्त बंदीगृह का रक्षक ऐसे असमय में मृणाल को देख कर और असंभावित संयोगों का दर्शन करके संत्रस्त हो गया।

अंधकारमय कारागृह के द्वार खुले। मृणाल की आज्ञा पा कर मसालची ने मसाल को अंदर जा कर रख दिया। और फिर बाहर आ कर खड़ा हो गया।

मृणाल अंदर गई तो बंदीगृह के अंधकार के साथ परिचित होने का प्रयास करने लगी।

अवंतिनाथ, मस्तक पर हाथ धर कर एक कोने में पड़ा था। उसने आहिस्ते से ऊपर देखा और मिठास भरे स्वर में कहा, "आओ न, मैं तो तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था।"

बात यों साधारण-सी थी, परन्तु स्वर ऐसा ममतापूर्ण था कि मृणाल के हृदय पर सजे हुए कवच के बंधन टूटने लगे।

"मेरी ?"

पृथ्वी वल्लभ लेटा हुआ था। वह उठा नहीं, उसी स्थिति में बोला, "हाँ, तुम्हारा। मुझे तो पूर्ण विश्वास था कि तुमसे बिना आए न रहा जायगा। कहो, अच्छी तो हो, प्रसन्न तो हो ?"

मुंज के स्वर से मोहक वातावरण फैल गया। मसाल की रोशनी में उसकी आँखें हास्ययुक्त मालूम दे रही थीं। क्षोभ को दबाते हुए, कसकर अपना हाथ पीछे की ओर करके मृणाल ने कहा, "तुझमें समझ नहीं है मुंज, या समझी हुई बात को कहने की पवित्रता नहीं है। मैं अपने काम के लिए नहीं आई हूँ, तेरे पापमग्न आत्मा का उद्धार करने आई हूँ। तेरा अन्तःकरण अत्यंत ही अपवित्र है, उसको शुद्धि के पवित्र पथ पर लगाने आई हूँ।"

"मृणालवती, केवल दूसरों के भले के लिए परमार्थ करने का कोई मूल्य नहीं," शान्तिपूर्वक मुंज ने कहा।

मृणाल ने निराशा से अपने कपाल पर हाथ रखा, "परमार्थ कहीं निज के भले के लिए होता है?"

उठ कर बैठता हुआ मुंज धीमे स्वर में बोला, "औरों की क्या कहूँ, मैंने स्वयम् भी परमार्थ किया है। गरीबों को उबारा है, उनके दुःख दूर किए हैं; लेकिन यह सब उनकी भलाई के लिए नहीं, केवल अपने स्वार्थ के लिए। इस प्रकार के परमार्थ से मेरा अन्तःकरण तृप्त होता था, इसलिए। इससे मेरी अहंवृत्ति को संतोष मिलता था। मेरे हार्दिक भाव इससे विकसित होते थे। दूसरे का भला करने का बहाना भी अपनी अहंवृत्ति को सन्तुष्ट करने का ही एक रास्ता है।"

मृणाल चुप थी, सोच रही थी। वह मुंज का भला करने आई है या अपने अन्तर्तम को संतुष्ट करने? उसको मुंज की बातों में किसी अपरिचित, किन्तु नग्न सत्यता का आभास होने लगा। तो भी मृणाल ने साहस किया, कहा, "यह भी तेरी बेशर्मी का एक लच्छन है।"

मुंज मुस्कराते हुए बोला, "ऐसा ही होगा। यह तो बताओ मुझे किस रास्ते पर ले जाने के लिए आई हो?"

"निष्कलंक जीवन के·····"

फौरन मुंज ने अपनी गर्दन ऊपर उठाई, "निष्कलंक! मृणालवती, जो अपने कलंक को जानते हैं उन्हीं को उसे दूर करने की आवश्यकता

रहती है। मुझे सिखा क्या रही हो ? तुम राजकुमारी सुरक्षित महलों में पली हुई, अपने को पूर्ण प्रभावशाली समझने वाली, वैराग्य के घमंड में चूर-चूर, तुम मुझे क्या सिखलाओगी ?"

मुंज का स्वर बहुत ही ममतापूर्ण हो उठा और वह हँस पड़ा।

"अगर समझ हो तो हरेक आदमी कुछ न कुछ सीख सकता है।"

मुंज को फिर हँसी आई, "मुझमें समझ है, तो भी तुम नहीं सिखा सकतीं। सिर्फ़ सीख सकता है जो दुखा हो, कच्चा हो, मुझे दुःख छू तक नहीं गया। अपरिपक्वता का मुझे अनुभव तक नहीं होता ! फिर भला तुम मुझे कैसे सिखाओगी ? और मुझे, सीखना ही क्या है ?"

"ओह ! कितना घमंड !"

"तुम चाहे इसे घमंड समझो। लेकिन अभी मेरी आपबीती तुमने सुनी कहाँ ? किसी अनाथ का परित्यक्त पुत्र और आज वही मैं पृथ्वी वल्लभ हूँ। सिंहिनियों ने मुझे दूध पिलाया और गजराजों ने मुझ पर चँवर डुलाया है। मैंने भिक्षा माँगी है, और दान में सिंहासन दे दिए हैं। दीन दुखियों के लिए मैंने अपना शरीर दे दिया और संपन्न सुखी लोगों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए हैं। मैंने सुन्दरियों का मधुकोष लूटा और लक्ष्मी जैसी ललिताओं का शिर काटा है। वेद-वाक्यों का पाठ करके देवदुर्लभ तपस्या की और शृंगार-सूत्रों का अध्ययन करके बीभत्स रस का भी साक्षात्कार किया है। मुझे और क्या सीखना बाकी रहा।"

मुंज ने अपना मस्तक पीछे की ओर झुका लिया और उत्तर की प्रतीक्षा में मौन रहा।

जब उक्त वाक्य मुंज के मुँह से निकल रहे थे, तो उसका मुख दंतपंक्ति की विद्युत आभा से रह-रह कर दीप्त हो उठता था। वर्षा ऋतु की संध्या के समान वह मर्मवेधी बन गया था। आँखों से फूटती मधुमती धाराओं ने चारों ओर मानों रस फैला दिया हो।

कुछ समय तक वह देखता रहा फिर स्नेह के आवेग में बोला, "मृणालवती, इतना अनुभव करके भी मैं सुखी हूँ। मैंने अपने अन्दर कलंक जैसी कोई चीज नहीं देखी। तुम मुझे क्या सिखाओगी ?"

मृणाल से कुछ उत्तर देते न बना, उसका गला रुद्ध हो गया और विवेक-शक्ति भी जाती रही।

"सीखना तो तुम्हें है, जीवन का आनन्द अभी तुमने नहीं लूटा। कुसुम-शय्या में समाया हुआ रहस्य तुमने नहीं समझा। रागरंग में मत्त हो कर नाचना तुमने नहीं सीखा यह सब तुम्हारे लिए बाक़ी है।"

मृणाल को क्रोध आ गया। उसने अपना हाथ ऊपर उठाया। मुंज लापरवाही से कहने लगा, "और किसी सहृदय पुरुष की रजाई में ·"

"पापी···· ·।" मृणाल दाँत पीस कर बोली।

मुंज हँस पड़ा। वह खड़ा हो कर मृणाल के बिलकुल निकट चला आया और बोला, "रससागर के मथने से क्या मिलता है, यह भी तुम्हें सीखना है।"

दाँत कुटकुटा कर मृणाल ने कहा, "चांडाल, निर्लज्ज, लंपट ! कल सुबह देख लेना।"

प्रौढ़ा के नेत्र लाल हो गए। मस्तक पर रक्तवाहिनी शिराएं उभर आईं।

मुंज फिर हँसते हुए बोला, "अच्छा; और कल शाम को तुम भी ख्याल रखना, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।"

मृणाल के मुँह में झाग आ गई, "मेरी प्रतीक्षा।"

"हाँ, तुम्हें सब कुछ सिखाना है न !"

"दुष्ट, तेरी जीभ ·· ··· ·····"

मुंज ने शांतिपूर्वक कहा, "मेरी जीभ से तो तुम जैसी अनेकों मानिनी महिलाएँ वश में हुई हैं। पृथ्वी वल्लभ के वक्ष से वक्ष मिलाए बिना तुम्हारा निस्तार अब नहीं।"

मृणाल की क्रोधाग्नि धधक उठी। उसने सामने खड़े हुए मुंज को ज़ोर से तमाचा मारा। वह खिलखिला कर हँस पड़ा, और अपने हाथ से मृणाल का हाँथ पकड़ कर होठों से लगा लिया।

वह चीख पड़ी, मानों बिच्छू ने डंक मार दिया हो। उसकी आँखें फटने-सी लगीं। अंग-अग काँप उठा।

सामने ही पृथ्वी वल्लभ था। आँखों से अमृतवर्षा और होठों से मादक मुस्कान जारी थी।

"कोई है !"

"आज्ञा !"—रणमल्ल सामने आया।

"इस पापी के हाथ क्यों नहीं बाँधे ?"

मुंज ने शांतिपूर्ण स्वर में कहा, "हाँ, रणमल्ल, अपनी शृंखला लाओ, जिससे हृदय की शृंखला तो खुले, अन्यथा उसका प्रभाव दुःसह होगा।" कुपित मृणाल सिंहिनी की भाँति क्रूर दृष्टि से देखती रही। नायक और सैनिकों ने मुंज के हाथों में हथकड़ी पहना दी।

"इस पापी ने मेरे हाथ का स्पर्श किया है रणमल्ल, इसका हाथ दाग़ दो।"

विस्मित नायक ने पूछा, "इसी समय ?"

मृणाल को उसके प्रश्न से धृष्टता का भान हुआ और गरज कर बोली, "क्या ?"

रणमल्ल थर-थर काँपने लगा। उसने एक भाले को मशाल से गरम किया।

"चलो, इतना विलंब ?" अधीरता के मारे पृथ्वी पर पैर पटकते हुए मृणाल ने कहा।

नायक ने सैनिकों को इशारा किया, "अरे पकड़ो उसका हाथ।"

मुंज ने मधुर स्वर में कहा, "किस लिए परिश्रम करती हो मृणाल ! तुम्हारे स्पर्श से ही बेचारे अंग जल रहे हैं। इनको जलाने के लिए और आग की क्या ज़रूरत है !"

उत्तर में मृणाल ने रणमल्ल से कहा, "चलो।"

मुंज के शृंखलित हाथों को सैनिक पकड़ने गए, लेकिन बहुत देर तक वह बँधे हुए हाथों से ही उन्हें थकाता रहा।

होंठ चबा कर मृणाल बोली, "कायरो, नामर्दो, अगर तुम इसे नहीं दागोगे, तो अभी तुम्हारा वध करवाऊँगी।"

निराशामय साहस से सैनिक मुंज के हाथों पर टूट पड़े और बड़ी मेहनत से उसका दाहिना हाथ पकड़ कर स्थिर कर सके। सैनिक परेशान हो कर थक गए थे, परन्तु मुंज आनन्द से खड़ा-खड़ा ज्यों का त्यों हँस रहा था।

रणमल्ल ने गरम किये हुए भाले से मुंज का हाथ दाग़ दिया। वह चुप रहा। हाथ दग़ाते ही नर-मांस जलने की बदबू सारे कारागृह में फैल गई।

दुर्गन्धि से तिलमिला कर मृणाल ने कहा, "बस करो" मुंज ज्यों का त्यों खड़ा था; अब ज़रा तिरस्कारपूर्ण स्वर में बोला, "अरे! बस, यही। अगर मैं जानता कि तुम इतने ही से खुश हो जाओगी, तो मैं स्वयम् ही अपना हाथ आप जला डालता।"

मृणाल निरुत्तर हो गई। वह लौटने वाली थी।

"इस घाव पर मलहम लगाने के लिए मृणाल कल ज़रूर आना।" भावावेश में होने के कारण मृणाल में इतनी भी स्वाभाविकता नहीं रह गई कि घूम कर वह मुंज की ओर एक नज़र देखती। लम्बे डग भरती हुई वह वहाँ से चली गई।

१८

असहाय अवस्था

मृणालवती वायु वेग से लौट आई। वह महल के विश्रांति-गृह म पहुँची, और मृगछाला पर लेट गई। उसके दिमाग़ को कुछ चैन न थी, हृदय में एक अज्ञात ताण्डव हो रहा था।

उसके रोम-रोम से लपटें निकल रही थीं। और वे क्षण-क्षण बढ़ रही थीं। इतने वर्षों के जीवन में अभी तक ऐसे क्षोभ, ऐसी बेचैनी, और ऐसी लपटों का अनुभव उसे हुआ नहीं था; उनकी शक्ति का परिज्ञान उसे नहीं था।

वासनामय बातचीत, स्पर्श और चुंबन, फिर वह चाहे पुरुष का हो, चाहे स्त्री का हो, सबसे मृणाल बिलकुल ही अपरिचित थी। अकस्मात् उनसे परिचित हो जाने से, वह संत्रस्त हो गई थी। उसका अंग-अंग काँपने लगा था। इस घनघोर कलंक से बचने का कोई भी उपाय उसे सूझ नहीं रहा था।

उस जैसी अकलंक और जीवन्मुक्त महिला से मुंज जैसे महापापी का स्पर्श! क्या करे, जीभ काट डाले? दीवाल से टकरा कर माथा फोड़ ले? आग में जल कर खाक हो जाय, यह कलंक कैसे दूर होगा, यह सब देख कर धरती पाताल में क्यों नहीं धँस गई। सूर्य क्यों न थक गया, पृथ्वी माता ने विदीर्ण हो कर अपने अन्तराल में उसको स्थान क्यों नहीं दिया? उसने सभी प्रकार का आमोद-प्रमोद बन्द कर दिया था, लोगों से भी करवाया था। वह कौन सा मुख ले कर बैठी रहेगी।

मृणाल की व्याकुलता का पारावार न रहा। उसके आत्म-

अपमान का प्रवाह उसकी शांति, बुद्धि और स्वस्थता सभी को बहा ले गया; वह डूबते हुए आदमी की तरह डुबकियाँ खाने लगी।

और, उसका तिरस्कार! वह कौन है सम्राट् की कन्या, सम्राट् की बहिन, साम्राज्य की कर्त्ताधर्त्ता; उसका ऐसा तिरस्कार! उसके मुँह के चारों ओर दुःसह लपटें उठने लगीं, उसकी आँखों से खौलते हुए पानी की तरह उष्ण आकुल अश्रुधारा बहने लगी। नीच, लंपट, पापी मुंज ने उसके साथ ऐसा व्यवहार किया! उस आततायी को दगवाया जाय, उसका शिरच्छेद कराया जाय, उसके खंड-खंड कर दिए जायँ, किन्तु इससे वह मिट कैसे सकता है? कौन-सा दंड चुना जाय जो उसके इस घोर दुर्व्यवहार को भुला सके?

अपनी असहाय अवस्था का ध्यान आते ही उसकी व्याकुलता सीमारहित हो उठी। उसने घबराहट के मारे हाथ-पाँव ताने, हथेलियों को मला, दाँत पीसे परन्तु व्यर्थ। पापी मुंज विजेता हुआ और वह स्वयम् ही दुर्दशाग्रस्त जँचने लगी, कलंकित प्रतीत होने लगी। इस परिस्थिति से छुटकारा पाने का रास्ता कोई रह नहीं गया था।

अब मृणाल को अपनी निर्जीवता का भान हुआ। उसकी आत्म-श्रद्धा पहले केवल डिग रही थी, अब ओझल हो गई। मुंज को, मुंज के मनोबल को जीतने के मनसूबे उसने बाँधे थे; तैलप की सत्ता के प्रताप से मुंज को लाचार, निराश्रित और असहाय करने का उसने संकल्प किया था। अपनी विवेक-बुद्धि से उसे लज्जित करने की आशा की थी।

उसके सब विचार, सब आशाएँ, सभी संकल्प धूल में मिल गए। सेना चाहे जिसे सेनापति माने, मालवा अथवा तैलंगण का चाहे जो राजा हो, वह स्वयं चाहे जैसी जीवन्मुक्त हो, लेकिन पृथ्वी वल्लभ मुंज तो पृथ्वी वल्लभ ही बना रहा। लज्जित तो वह स्वयं ही हुई है, विजित तो वह स्वयं ही हुई है। यही विचार उसके दिमाग़ में चक्कर काटने लगे। वह नीच से नीच था किन्तु उसका प्रताप अब भी ज्यों का त्यों

प्रकाशमान प्रतीत हो रहा था। उसका अनोखा और प्रभावशाली व्यक्तित्व अब भी ज्यों का त्यों अखंड दीख रहा था। तैलंगण की जो प्रजा मुंज के प्रति सहज द्वेष भाव रखती है, मुंज ने उससे भी नाच करा लिया और गाने गवा लिए। मृणाल-सी कूटनीति-विशारद महिला को भी उसने मात कर दिया था; अपने प्रभुत्व की महिमा से उसने मृणाल जैसी प्रभावशालिनी और भयंकर स्त्री को भी दुर्दशा का कटु अनुभव करा दिया। हृदय पर अग्नि का-सा दाग़ पड़ने पर भी वह ज्यों का त्यों पृथ्वी वल्लभ ही बना हुआ है।

मुंज का तेजोमय, प्रतापी और मुस्कान भरा मुखमंडल मृणाल की आँखों के सामने नाच गया। रणमल्ल ने जब मुंज का हाथ दाग़ा था और जिस समय वह स्वयम् भी चीख पड़ी थी, उस वक्त भी पृथ्वी वल्लभ के मुख की शांति पूर्ववत् ही रही। उसकी आँखों में हँसी थी, मुखमाधुरी में कटुता का तनिक भी मिश्रण नहीं हुआ था।

१६

कालरात्रि

मृणालवती तड़प रही थी, परंतु बिस्तरे पर लेटे-लेटे तड़पने से कभी किसी का दुःख दूर हुआ है ? वह उठ कर टहलने लगी। खिड़की के सामने जा खड़ी हुई। दरवाजे की ओर जा कर लौट आई। उसकी जीभ सूख गई थी। बारंबार चाँपने से होंठों पर लाली छा गई थी, आँसू इतने बहे थे कि आँखें लाल हो आई थीं।

वह फिर ध्यान धारण करने के लिए बैठ गई। कठिनतम आसन लगा कर निर्द्वन्द्व सिद्धि का साधन करने लगी। दासी भोजन के लिए सूचना देने आई, परंतु मृणाल को बद्ध आसन देख कर चुपचाप उल्टे पाँव लौट गई।

रात आ पहुँची। घड़ियाँ बीतने लगीं, परंतु दृढ़ आसन मारे, साधना में लीन-सी मृणाल के मस्तिष्क में स्वस्थता और एकाग्रता न आ पाई।

पहले तो उसका हृदय डुबकियाँ लगा रहा था, लेकिन अब वह डूब कर गहराई में चला जाने लगा, आधार नहीं रह गया था। डूबने के समय जैसे आदमी के दिमाग़ में, आँखों के आगे अपनी प्यारी की मूर्त्ति आ खड़ी होती है, वैसे ही अगाध तल में जाता हुआ उसका हृदय एक ही अभिराम मुखाकृति का ध्यान कर रहा था और वह थी पृथ्वी वल्लभ की मुखाकृति।

समय कब बीत गया और कैसे, जान भी न पड़ा। उसके मस्तक पर अज्ञान का आवरण-सा पड़ गया। धीरे-धीरे उसे नींद आने लगी।

वह नींद में थी या जाग रही थी, इसका भी उसे बोध नहीं था; वह सपने देख रही थी या सच्ची घटनाएँ, इसकी भी उसे सुध नहीं

थी। केवल एक मुख बारंबार दिखाई दे रहा था? उसके रूपान्तर होते, तथापि वह पूर्ववत् ही रहता। विशाल और मनोहर आँखों से रस टपकता। और सुंदर और मधुर मुखमंडल एक अनोखी मोहकशक्ति से निमंत्रण देता। उसके साथ ही हृदय में एक टीस उठती—यह कलंक कब दूर होगा?

इस दृश्य में हेर-फेर होने लगा, अनेक नए प्रसंग उपस्थित होने लगे, लेकिन वह मुखड़ा ज्यों का त्यों बना रहा। मृणाल में इतनी ताकत नहीं रह गई कि वह उस मुखड़े को अपनी निगाह से ओझल होने दे। उसका मस्तक छाती की ओर झुक आया।

मनोराज्य का विकास हुआ। मुख के बदले संपूर्ण मुंज का समूचा सकल शरीर साकार-सा सामने खड़ा हो गया। कारागृह दिखलाई पड़ा। उसके घोर अंधकार में शत सहस्र सूर्य्यों की कांति से दीप्यमान अनुपम नरोत्तम को मृणाल ने देखा। उसे मालूम हुआ कि उसका हाथ जल रहा है। उससे लपटें निकलती हुई मालूम हुईं और यह भी मालूम हुआ कि वे उसके रोम-रोम में व्याप्त हो गईं।

पैंतालीस वर्ष की उम्र तक वह ब्रह्मचारिणी रहती आई है। कभी किसी समय भी अनंग का असंभवनीय शासन उसके अंगों पर नहीं हुआ था। यौवन का निर्झर अच्छी तरह उद्भूत नहीं हो पाया था। उद्भवकाल से पहले ही वह धरती में समा गया था।

मृणाल को यह अग्नि दुःसह अवश्य प्रतीत हुई, लेकिन उसकी लपटें उसे अच्छी मालूम हुईं। अर्धनिद्रित अवस्था में मुंज के किये हुए चुम्बन की चेतना मृणाल की रग-रग में परिव्याप्त हो गई।

उसने असहाय की इस भयंकर अवस्था से छुटकारा पाने की बहुत कोशिश की; इस पाप-समाज से जाग्रत होने के लिए बहुत प्रयत्न किए; परंतु उसे लगा कि वह नागपाश से आबद्ध हो गई है और बड़े गहरे में डूबती चली जा रही है। उद्धार का कोई उपाय उसे नहीं सूझ पड़ा।

अचानक मुंज का दर्शन उसे फिर हुआ, उसके अङ्ग-अङ्ग से मोहकता फूट रही थी। जैसे ही वह मृणाल की ओर लपका और उसे दबोचने लगा, वह गिर पड़ी।

मृणाल चौंक कर जाग पड़ी, जैसे बर्रों ने काट खाया हो। वह खड़ी हो कर व्यग्रता से चारों ओर देखने लगी। उसके अङ्ग-अङ्ग में काँटे चुभ रहे थे। उसे सूझ नहीं रहा था कि वह कहाँ है, उसकी नाड़ियाँ कौन-सा नाच नाच रही हैं—यह उसकी समझ के परे था। बहुत कुछ विचारने पर भी वह मालूम नहीं कर पाई कि आज उसका हृदय किस आशा से पूरित हो कर उछल रहा है।

उसने अङ्गड़ाई ली। हाथों को दबाया, उँगुलियाँ चटकाईं, आँखें मलीं; लेकिन मुंज कहाँ था, वह स्वयम् कहाँ थी, यह सब क्या कुछ हो गया था, कुछ भी उसकी समझ में न आया, वह केवल उन्मादिनी की भाँति देखती भर रही। उसे मालूम हो रहा था कि उसके अङ्ग-अङ्ग उड़े जा रहे हैं।

उसने अपने सीने पर हाथ रखा, दिल अजीब तरह से धड़क रहा था, उसने माथे पर हाथ फेरा, वहाँ कोई विचित्र ही भाव स्पंदित हो रहा था।

मृणाल बैठ गई। धरती पर गिर पड़ी। उसे अपनी स्थिति का भान हुआ। शरीर का एक-एक अङ्ग, हृदय कमल की एक-एक पंखुड़ी क्रन्दन कर रही थी, चिल्ला रही थी। वे मुंज को चाहती थीं। उन्हें उसी की आवश्यकता थी।

मानवती तापसी उन्मादिनी हो गई थी, उसे अपने पतन का भान हुआ। लड़ने के लिए शस्त्र न थे, उत्साह न था, विवश हो कर मृणाल ने पुष्पधन्वा (कामदेव) का सहारा लिया। त्रिपुरान्तक की तीसरी आँख से भस्म होने वाले द्वेषी देवता ने उसे जलाना आरंभ किया। थोड़ी देर में आग की लपटें ठंडी पड़ गईं। शीतल समीर के शांतिदायी झोंकों को भुला देने वाली कुछ शिशिर तरंगें उसकी देह को

थपथपाने लगी। वह आँखें मींच कर लंबी लेट गई और उन तरल लहरों का अनुभव करने लगी।

ऐसा तरंगों का स्वप्न में भी मृणाल ने कभी अनुभव नहीं किया था। उनसे वह भयभीत नहीं हुई, चकित नहीं हुई; बल्कि एक अनिर्वचनीय आह्लाद का अनुभव करने लगी। वह अपने अंग-अंग का स्पर्श कर रही थी, रोम-रोम को आनन्दमय चेतना से उज्जीवित कर रही थी। उसका अंतस्तल एक अपरिचित, किंतु आनन्द-दायक गति से उछल रहा था। एक अज्ञात उत्साह से प्रेरित होकर उसके हाथ की नसें सिमटने के लिए तिलमिला रही थी।

मृणाल की नस-नस में अद्भुत आनंद का संचार हो रहा था। उसने अपने हाथ आँखों पर रखे, धड़कते हृदय को जोर से दबाया और पैरों को एक दूसरे से सट गए।

मुञ्ज की मानसिक प्रतिमा के पैर छू कर ही ये तरंगें आ रही थीं; मृणाल ने उन्हें आने दिया। स्वास की गति धीरे-धीरे बढ़ती गई, चेहरा लाल हो गया। मस्तिष्क में विचारों ने चक्कर लगाना शुरू किया। मादकता से उसका चित्त चंचल हो उठा। उसे प्रतीत हुआ कि मुंज निकट आ रहा है, उसने लंबी साँस ली। सब प्रयत्न छोड़ कर उसने अपने को सुखमय पराधीनता में जकड़ जाने दिया।

मृणाल को भली भांति नींद आई भी न थी कि उसने तेजस्वी पृथ्वी वल्लभ को आते देखा। वह आया, आनन्द का प्रसार और उत्साह की प्रेरणा करता हुआ। मृणाल से वह लिपट गया। एक नहीं, हज़ार बार उसने मृणाल के मुख का चुंबन किया। किन्तु मृणाल लेटी ही रही। आनंदमय और आमंत्रित अधीनता में।

जाने क्या हुआ, हृदय को चोट लगी, सुख के शिखर पर पहुँच कर फिर वह नीचे गिर गई। आँखें खोल कर वह बैठ गई, उसका दिल बुरी तरह धड़क रहा था, अवर्णनीय आनन्द की समाधि उसने प्राप्त की और गँवा दी।

मृणाल खड़ी हो गई, मुँह धोया और जँगले के बाहर झाँका। ठंढी हवा के थपेड़े उस पर लगने लगे।

उसे ध्यान आया, वह गंगा की धारा के समान कहाँ से कहाँ बह गई। वैराग्य-मूर्त्ति, तपोनिधि शंकर के जटा-जूट से नीचे गिर कर वह अधमता की बालुका में व्याकुल हो रही थी।

वह कलंकित हो चुकी थी, जीवन भर के उसके व्रत और नियम भंग हो गए थे। अब क्या करना चाहिए, भाई क्या कहेगा, भाभी क्या कहेगी, नगर और देश के लोग क्या कहेंगे, पापी मुंज स्वयं क्या कहेगा, इस कलंक से वह किस प्रकार जीवित रह सकेगी? जीवन में जो एक कली नई-नई विकसित हो चली है, उसे सुखा कर या छिपा कर ही वह जी सकती थी और कोई उपाय नहीं था। आज रात को जिस आनन्द की उसे अनुभूति हुई, उसको छोड़ कर मृणाल के लिए यह दिन अस्पर्श्य ही रहा।

२०

पाद-प्रक्षालन

उस दिन सुबह से ही महाराज आहवमल्ल के दरबार में धूम मच गई। सामन्त और सेनापतियों के दल इकट्ठे होने लगे।

पाद-प्रक्षालन पाप-पुण्य का एक कुण्ड था उसमें से जो बंदी राजा निर्विघ्न निकल आते, उनको सामंत घोषित कर दिया जाता और उन्हें अपना राज्य भोगने की आज्ञा दे दी जाती थी, परन्तु जो घमंड के नशे में होते और पाद-प्रक्षालन करना अस्वीकार करते उन्हें हाथी के पैरों से कुचलवा दिया जाता या जीवन भर के लिए कठोर कारागृह में उन्हें डाल दिया जाता था। स्वयम् तैलप ने अनेक बार मुंजराज के पैर धोए थे और इस प्रकार प्रसादी के तौर पर तैलंगण का सिंहासन पुनः प्राप्त किया था। आज स्थिति उल्टी थी। तैलप विजेता था और मुंज पराजित। तैलप के पैर धो कर मुंज को अवन्तिका की याचना करनी थी।

सभी का ख्याल था कि मुंज इस दंड को कभी स्वीकार नहीं करेगा तथापि यह निश्चित था कि मुंज से यह काम अधिकारपूर्वक भी नहीं कराया जायगा, क्योंकि बन्दी राजाओं का शरीर अस्पर्श्य और पवित्र समझा जाता था। इसीलिए बहुत सोच-विचार करने के बाद तैलप ने इस युक्ति का सहारा लिया था। अगर मुंज पाद-प्रक्षालन करेगा तो हमेशा के लिए उसकी कीर्ति मिट जायगी। और तैलप पृथ्वी वल्लभ कहलाएगा; यदि मुंज इसे स्वीकार न करेगा तो तैलप को यह अधिकार प्राप्त हो जायगा कि मुंज को जैसा चाहे वैसा दण्ड दे।

सारे नगर में सबके ही दिमाग़ में एक ही सवाल चक्कर काट रहा था—क्या मुंज तैलप के पैर धोएगा ! कई आदमी सोचते थे कि मुंज यदि स्वीकार कर ले तो ठीक ही है, इससे वह बच भी जायगा और विजेता की कीर्त्ति भी बढ़ेगी। बहुतेरे यह सोचते थे कि यदि स्वीकार न करे, तो अच्छा है। इससे वह या तो जीवन भर बंदी रहेगा या जान से हाथ धोएगा और तैलप की कीर्त्ति बढ़ेगी। अनेक मनुष्य उसके रूप और गुण पर मुग्ध थे। वे आशा कर रहे थे कि किसी भी प्रकार मुंज बच जाय, तो अच्छा है, परन्तु इस आशा को कोई व्यक्त नहीं कर सकता था, राजसभा में जिन्हें आने का अधिकार था, वे आ चुके। कोई भी इस अनुपम दृश्य के आनन्द से अपने को वंचित नहीं रखना चाहता था। सूर्योदय के बाद राजसभा में तिल रखने की भी जगह नहीं रह गई थी।

जब सभी लोग आ चुके, तो महासामन्त को साथ लिए हुए तैलप-राज आए। कुमार अकलंक भी साथ थे। तैलप के सिंहासन के पास पीछे से अन्दर जाने का एक द्वार था, उसमें मृणालवती, जक्कला और लक्ष्मी भी आ कर बैठ गईं। मृणालवती का मुख कठोर और म्लान था, नेत्रों में भयंकर तेज था, उसकी मुखमुद्रा देख कर ही लोगों ने समझ लिया कि मुंज का अन्तकाल निकट आ पहुँचा।

तैलपराज अपनी मूँछों पर ताव देने लगे। उन्होंने दो सामन्तों को आदेश दिया, "बन्दियों को ले आओ !"

कुछ ही देर में सभी बन्दी राजा आ गए, उनमें सबसे आगे मुंज था। उसके हाथ पीछे बँधे थे।

जिस प्रकार वह विजयी अपनी सेना में चलता था, उसी प्रकार आया। बिखरे हुए बाल उसकी शोभा बढ़ा रहे थे; दीप्त अभिमान उसके मुख का गौरव बढ़ा रहा था; गर्दन की मरोड़ उसकी स्वनिर्मित सहजसत्ता को सिद्ध कर रही थी। वह देव की तरह आया। राजसभा केवल पशुओं की सभा है ऐसा मालूम होने लगा।

उसे भरी सभी में देख कर मृणाल का रोम-रोम खड़ा हो गया। रात की बातें याद करके नवयौवना की तरह उसके गालों पर भावावेश की रेखाएँ खिंच गईं। मृणाल ने प्रयत्न किया कि उसके क्षोभ को, भावावेश को कोई देख न ले।

दिन के प्रकाश में, उस नरनाथ के मोहक शरीर की एक-एक अपूर्व रेखा, चोरों की तरह चुपचाप अपने हृदय-पट पर उसने अंकित कर ली। आँखों के आगे कल्पना से सजीव कर ली।

मुंज को ला कर तैलप के सिंहासन के आगे खड़ा कर दिया गया। गर्वपूर्ण हँसी हँस कर उसने अपनी मुखाकृति को दीप्त किया और निरपेक्ष, निश्चिन्त खड़ा रहा।

तैलप ने आदेश दिया तो बन्दीजनों (चारणों) ने उसकी स्तुति गाई। स्तुति के होते-होते ही पीछे राजा ने महासामन्त की ओर घूम कर पूछा, "भिल्लमराज, कल जिन कवियों को छुड़ा ले गए हो, उनका क्या हुआ?"

"वह बैठे हैं" महासामन्त ने धनंजय, रसनिधि और अन्य कवि जिधर बैठे थे, उधर उँगली उठाई।

"उनसे कहो कि कुछ सुनाएँ। उन्होंने मुंज को ऊँचा तो बहुत चढ़ा दिया अब उसे नीचे उतारने में शमिल होंगे या नहीं?"

राजा की दलील सुन कर भिल्लमराज हैरान रह गया। परंतु राजसभा में राजा का वचन कैसे भंग किया जा सकता था। उसने आ कर धनंजय से राजा का आदेश कह सुनाया।

अवन्ती के कवियों को रोमांच हो आया। बहुतों ने रसनिधि की ओर घूम कर देखा।

रसनिधि ने झट धनंजय से कहा, "महाराज, आप सरस्वती के दुलारे हैं, कुछ कहिए।"

धनंजय ने आँखों से ही स्वीकार किया और 'हाँ' कह कर वह सामन्तों के बीच से होता हुआ सिंहासन के निकट पहुँचा।

ज्यों ही धनंजय सिंहासन के पास पहुँचा कि मुंज की नज़र उस पर पड़ी। अभी तक वह दूसरी ओर देख रहा था।

हँसते हुए मुंज ने कहा, "देखना धनंजय, अवंतिका का नाम न डूबने पाए।"

विनम्र होकर धनंजय बोला, "जो आज्ञा।"

यह सुन कर तैलप चिढ़ गया। उसके कपाल पर क्रोध की रेखाएं खिंच आईं। उसने तिरस्कारपूर्वक कवि की ओर देखा और पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा?"

धनंजय उत्तर देना चाहता ही था कि मुंज ने उच्च स्वर में कहा, "तैलप, इतना भी पता नहीं है! जिसकी कविता सुन कर भगवती मयूरासना अपनी वीणा छोड़ देती है, जिसके विख्यात नाम से अपरिचित रहने वाला व्यक्ति सदा नरक के से अन्धकार में रहता है, जो कवियों का भी कवि है, और अवंतिका का गौरव, यह वही महाकवि धनंजय है।"

उस समय के कवियों को शोभा देने वाले शब्दों में ही मुंज ने यह सब कहा।

"तुझसे मैंने नहीं पूछा था," क्रुद्ध तैलप मुंज की ओर घूरता हुआ बोला।

मुंज ने शांतिपूर्वक कहा, "मैं कब कहता हूँ कि मुझसे पूछा जाय, लेकिन अपने ही मुँह से अपनी प्रशंसा कराते हुए, विनयशील पुरुषों की सभा में सुना नहीं गया।"

सभासदों के हृदय काँप उठे, तैलप जिस क्षुद्रता का अनुभव कर रहा था, वह सबको साफ मालूम हो रहा था। इससे तैलप का क्रोध बढ़ गया, यह भी लोग देख रहे थे। इसका अनिश्चित परिणाम जानने के लिए सब लोग शिर उठा कर तैलप की ओर देखने लगे।

तैलप ने धनंजय से कहा, "अच्छा, कहो।"

धनंजय ने पहले महाकालेश्वर की प्रशंसा में एक अनुष्टुप कहा और उसके बाद राजा की स्तुति शुरू की।

रचना बहुत ही सरस थी उसमें, पृथ्वी ने जिसे अपना वल्लभ बनाया है, उस राजराजेन्द्र की स्तुति की गई थी। एक प्रकार से वह तैलप की प्रशंसा मालूम होती थी, लेकिन मुंज की प्रशंसा भी उससे हो गई, ऐसा प्रतीत हो रहा था। तैलप कुछ समझ गया, अपने रोष को दबा कर वह बोला, "धन्य! कविराज, जाओ बैठो।"

धनंजय नमस्कार करके अपने स्थान पर आ बैठा। मृणालवती यह सब बड़े ध्यान से देखती और सुनती रही। जिस छवि से, जिस छटा से जिस रोब-दाब से, जिस आधिपत्य से मुंज सारी सभा में सुशोभित हो रहा था. उसे देख कर मृणाल को बड़ा गर्व हुआ। जैसे-जैसे तैलप की भौंहें टेढ़ी होती गईं, जैसे-जैसे उसकी आँखों में क्रूरता दिखाई पड़ने लगी तैसे-तैसे मृणाल का हृदय भयभीत हो कर काँपने लगा कि कहीं तैलप उसे मार डालने का आदेश न दे बैठे।

धनंजय जब बैठ गया तब मुंज ने तैलप की ओर देख कर पूछा, "क्यों तैलपराज, कवि कैसा लगा?"

मुंज के निरपेक्ष और अर्धतिरस्कृत प्रश्न से तैलप होंठ चबा कर रह गया। सभा में ऐसी नीरवता छा गई कि सुई गिरने का शब्द भी सुनाई पड़ सकता था। सबके हृदय क्षुब्ध हो उठे।

तैलप की आँखें तलवार की धार-सी तेज हो उठीं। उसने खाँस कर गला साफ़ किया, फिर कहा, "मुंज तेरे पापों का घड़ा भर गया है, तेरी राजलक्ष्मी का अंत हो चुका है। तू..."

मुंज ने कहा, "कौन कहता है?"

तैलप ने कहा, "मैं कहता हूँ।"

उत्तर में मुंज ने विनोदात्मक ढंग से हँस दिया और चुप्पी साध ली।

"प्रतिष्ठा से जीवित रहने का अब एक ही रास्ता रह गया है....।"

मुंज ने इस बात की पर्वाह नहीं की। वह निश्चिन्त हो कर उस द्वार की ओर देखने लगा जहाँ मृणाल बैठी हुई थी।

उस काल की कृत्रिम भाषा में तैलप ने फिर कहा, "जिन पैरों से आज धरती काँप रही है, उनका प्रक्षालन करके अपने अपराधों की क्षमा माँग।"

दो सैनिकों ने मुंज की हथकड़ियाँ खोल दीं। एक सामन्त सोने की झारी में जल ले कर आगे आया। पाद-प्रक्षालन करवाने के लिए अत्यन्त ही उत्कंठित तैलपराज ने अपने पैर सिंहासन के नीचे लटका दिए।

जैसे ही मुंज के हाथ स्वतंत्र हुए कि गर्व से उसने ऊपर की ओर देखा।

झारी ले कर खड़े हुए सामन्त ने कहा, "मुंजराज, चलिए, महाराज के चरणों का प्रक्षालन कीजिए।"

मुंज ने आश्चर्य-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा—'सामन्तराज, ताण्डव से त्रिभुवन को कंपित करने वाले चंडीश्वर भगवान् महाकाल के प्रतापी चरण कहाँ हैं कि जिनको प्रक्षालित करके यह पृथ्वी वल्लभ पवित्र हो जाय?"

उत्तर की प्रतीक्षा में मुंज खड़ा रहा।

बेचारा सामन्त झारी हाथ में लिए हुए हतप्रभ-सा खड़ा था। उसकी जीभ तालू से सट गई, तैलप की भौंहें सिकुड़ कर भयानक हो गईं, महासामन्त भिल्लम कोई तरकीब सोचने लगा। कुछ देर बाद वह मीठे स्वर से बोला, "अवंतिनाथ, महाराज आहवमल्ल के चरणों का प्रक्षालन कीजिए; विजेता का यह परंपरागत अधिकार है।"

मुंज तिरस्कारपूर्वक हँसा, "सूनराज! पृथ्वी वल्लभ के पैर धो-धो कर जिसके हाथ का गीलापन भली भाँति सूखा भी नहीं उस तैलप के मैं पैर धोऊँ! क्या आपका भी मस्तिष्क भ्रान्त हो गया है?"

मुंज के शब्दों और दृष्टिपातों में तिरस्कार भरा था।

द्वार में बैठी अज्ञात विचारों से हृदय को भरती हुई मृणाल मुंज की ही ओर देखती रही।

तैलप के क्रोध की सीमा न थी, उसकी आँखों से चिनगारियाँ उड़ने लगीं। वह खड़ा हो गया, "घमंडी, पापी, अब भी तेरा घमंड चूर-चूर नहीं हुआ?"

जैसे एक भरा-पूरा लम्बा-तगड़ा आदमी किसी बच्चे से बातचीत करता है, वैसे ही लापरवाही से हँसते हुए मुंज ने कहा, "भला ऐसी डींग मार कर भी कोई पृथ्वी वल्लभ बना है?"

"क्या बक रहा है दुष्ट, खड़ा रह!" तैलप ने चिल्ला कर कहा। आधी सभा खड़ी हो गई।

गुस्से के मारे भन्ना कर तैलप ने चारों तरफ देखा। उसके नेत्र विकराल हो गये, अंग-अंग फड़कने लगा था।

"सामन्तो! देख क्या रहे हो? पकड़ो इस पापी को। धुलवाओ इससे मेरे पैर!" चार-पाँच सामन्त आए मुंज की ओर।

अपने प्रचंड और भीमकाय शरीर को सीधा करके मुंज निर्भयता-पूर्वक खड़ा रहा। उसके नेत्र अनिमेष थे, मुँह पर गर्व की मुस्कराहट थी, अपनी गर्दन की मरोड़ से ही वह सब को आतंकित कर रहा था।

मृणाल ने यह सब देखा और इस सब में मुंज का व्यक्तित्व कैसा अनुपम, और दुर्धर्ष था, यह भी उसने देखा। उसे भी गर्व का बोध हुआ और वह मुंज की विजय देखने के लिए एकटक देखती रही। उसके होंठ बन्द हो गए, जो चमक मुंज की आँखों में थी, वही उसकी भी आँखों में आ गई। जो सामन्त आगे बढ़े थे, वे बारी-बारी से मुंज और तैलप की ओर देखते हुए खड़े हो गए। किसी में साहस नहीं कि मुंज के निकट जाय।

तैलप होंठ चबा कर बोला—"डूब मरो जो इस तरह देख रहे हो। अकलंक! तुझे भी लज्जा नहीं आती?"

कुमार और सामन्त मुंज का हाथ पकड़ने आगे बढ़े। भिल्लम मन मारे मौन खड़ा रहा।

"आओ! डर क्यों रहे हो?" मुंज ने मुस्करा कर कहा। और जो सामन्त उसे पकड़ने आए थे, उनको उसने आसानी से तितर-बितर कर दिया।

राजसभा में कोलाहल मच गया। अपमानित तैलप दूसरे सामन्तों से कहने लगा, "देख क्या रहे हो?" आठ-दस सामन्त टूट पड़े और उन्होंने मुंज के हाथ पकड़ लिए। जिस हाथ को मृणाल ने दगवाया था, उसमें से कच्चा मांस निकल पड़ा, मृणाल ने यह दृश्य देखा और निःश्वास लिया, दूसरे ही क्षण वह भी आँखें मींचे हुए उठ खड़ी हुई।

मुंज को पकड़ना एक बात थी और उसे झुका करके उससे पैर धुलवाना दूसरी बात थी। पहाड़ की चोटी के समान सबसे ऊँचा और तना हुआ-सा वह थोड़ी देर खड़ा रहा। सामन्तों के प्रयत्न निष्फल होने लगे। आखिर में उन्होंने मुंज को घसीटना शुरू किया।

मुंज में अद्‌भुत बल था। पहले तो वह सम्मिलित आक्रमण के प्रतिरोध में आसानी से अपना बचाव करता रहा, हँसता रहा, सबको थकाता रहा, परन्तु अन्त तक वह खड़ा नहीं रह सका। तैलप के मुख पर क्रूर हास्य था।

एकाएक, बिजली की गति से मुंज आगे बढ़ा और जो सामन्त उससे धींगामुस्ती कर रहे थे, उसे झकझोर रहे थे, उनके हाथ अचानक छूट गए, जो सामन्त झारी लिए हुए था, वह निश्चिन्त भाव से खड़ा-खड़ा यह खींचातानी देख रहा था। मुंज बढ़ा और उसने उचक कर अपने कन्धे से झारी में धक्का मारा, सामन्त के हाथ से झारी छिटक कर पास खड़े तैलपराज पर पड़ी, उसके सारे शरीर पर पानी ल गया।

यह सब पल भर ही में हो गया। सामन्तों ने मुंज के हाथ छोड़ दिए। तैलप गिरते-गिरते अपना मुकुट सँभालने लगा। मुंज अकेला आनन्द से खड़ा, कहकहा लगा कर हँस रहा था।

मृणाल द्वार की देहली पर आ खड़ी हुई।

तैलप की मुखाकृति हास्यजनक हो गई। उसका गौरव गलित हो गया था, दाँत पीस कर जोर से वह चिल्लाया और म्यान से तलवार खींच ली।

सौ तलवारें म्यान से बाहर निकल पड़ीं, पर मुंज के चारों ओर महाकाल की लपलपाती जिह्वाओं की तरह उनकी घटा छा गई। मुंज निर्भय खड़ा रहा। तलवारों की धारों का उत्तर उसकी आँखों की तेज़ धार दे रही थी।

"दुष्ट, अपनी करनी का फल भुगत ले ···मारो इस चांडाल को!"

तैलप ने कड़कती आवाज़ में आज्ञा दी।

तलवारों की झनझनाहट हुई। अभिमानी मुंज सहज भाव से देखता रहा।

"यह क्या कर रहे हो?" अचानक एक स्वर चारों ओर गूँज गया।

क्रोध से ज्वलित महाकाली की तरह मृणालवती हुंकार कर उठी, झपाटे से तैलप के पास आई, और उक्त शब्द कहे, उसकी आँखों में अधिकार का असीम मद चमक रहा था, उसके स्वर में युद्ध की गर्जना थी।

सारा तैलंगण जिस स्वर से कंपित हो उठता था, उस स्वर को सुन कर सामन्तों की तलवारें नीचे झुक गईं। स्वयं तैलप भी लज्जित हो गया।

मृणाल ने क्रोध से कहा, "कर क्या रहे हो! लज्जा नहीं आती, एक निहत्थे राजा पर हथियार चलाने को तैयार हो गए! तैलंगण क

कलंकित करने पर उतारू हो। तैलपराज! यह तुम्हारे योग्य नहीं, तुम्हारे धर्मराज में ऐसा कुकर्म!"

मृणाल की छाती धड़क रही थी।

सब सुनते रहे, मुंज मन ही मन हँस रहा था।

"जाओ, सभा विसर्जित की जाती है। मुंज के विषय में फिर उचित विचार किया जायगा। चलो भाई!" मृणाल तैलप की ओर देखने लगी।

तैलप कुछ रुष्ट हो गया था, उसी भाव से उसने मृणालवती को देखा, परन्तु दूसरे ही क्षण मृणाल का आतंक उस पर छा गया और मस्तक झुका कर वह मृणाल के साथ चल पड़ा।

२१

भाई और बहिन

"बहिन, तुमने यह क्या किया ?" अन्दर जाकर तैलप ने पूछा।

"तुम्हारी कीर्त्ति बढ़ाई," मृणाल बोली, "राजाओं का शरीर युद्ध के सिवा सदा ही अस्पर्श्य है।"

तैलप मौन रहा।

"यह पाद-प्रक्षालन नहीं करता है, तो इसे दूसरी सजा देना तो अपने हाथ में है।"

"सारी दुनिया मेरी हँसी उड़ाएगी।"

"ना भाई, तेरी निष्कलंक राजनीति का यश गाएगी। इतना अपमानित होने पर भी तू सचाई को पकड़े रहा, इससे बढ़ कर और कौन-सी कीर्त्ति की आशा करता है!"

तैलप ने गर्दन हिला दी।

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। पीछे तैलप ने कहा, "तो इसका क्या करना है ?"

"दूसरी बात जो तू कहे वह।"

"काष्ठ-पिंजर में इसको रक्खा नहीं जायगा, प्राणदण्ड इसको दिया नहीं जायगा, तो उसका और क्या होगा ?"

"अभी तो कारागार में है, पीछे देख लेंगे, जल्दी क्या पड़ी है।"

"मेरी तो कुछ समझ में ही नहीं आ रहा है।"

तैलप ने फिर गर्दन हिलायी और चल पड़ा।

"आएगा, आएगा," मृणाल ने उसे आश्वासन दिया।

राजा वहाँ से चला गया। अकेली मृणाल, चिन्ता में मग्न, वहाँ

रह गई। उसका हृदय आनंदित हो रहा था। उसने मुंज को मरने से बचाया था, मृणाल की कल्पना-शक्ति का बाँध फिर टूट पड़ा और पल-पल मुंज का स्वरूप जो मोहकता धारण कर रहा था, उसको फिर से मृणाल ने अपनी आँखों के आगे आने दिया। इस रसमय प्रयत्न का आँखें मूँद कर उसने स्वागत किया और ऐसा होने में सफल होने पर वह मुस्कराई और वक्षस्थल को अपने हाथों से दबाए वहाँ से चल दी।

× × ×

मान-भङ्ग होने की भावना में तैलप कुछ देर तक एकांत में इधर-उधर चक्कर लगाता रहा। उसके गर्व पर बहुत बड़ा आघात पहुँचा था। निस्सन्देह उसकी स्थिति बहुत ही तिरस्कारपूर्ण हो रही थी, सारा तैलङ्गण तो क्या, सारी दुनिया इस पाद-प्रक्षालन कांड को नहीं भूलेगी, और, इसमें विदूषक वह स्वय ही प्रमाणित होगा इस बात में उसे कोई सन्देह नहीं रह गया।

उसकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि मृणालवती ने ऐसा क्यों किया। मुंज उसका ऐसा अपमान करे और उल्टे मृणाल मुंज की ही प्राणरक्षा करे! बहिन के प्रति भाई को बहुत श्रद्धा थी, और मुंज के प्रति घोर तिरस्कार। कुछ देर तक उसने सोचा पर कुछ समझ में आया नहीं।

———

२२

विलास का स्वास्थ्य

पुरुष और स्त्री में परस्पर प्रेम की अपेक्षा न हो तो उन्हें काव्य और सङ्गीत का साहचर्य नहीं करना चाहिए। काव्य और सङ्गीत की सेवा आकाशयान का अभाव पूरा करती है। और इनके सेवक-सेविका-गण बिना डोरी के ही आसमान में ऊपर चढ़ जाते हैं—उन्हें एक दूसरे का ही अटूट सहारा मिल जाता है। वे अभिन्न एकता में जुड़ जाते हैं। विलास और रसनिधि यह बात भूल गए।

रस का स्वाद लेते-लेते विलास की तृष्णा बढ़ती गई और रसनिधि ने अक्षय रसधारा बरसा-बरसा कर उस किशोरी की तृष्णा पर पर्दा डालने का प्रयास बराबर किया।

'मालती-माधव' के तूफानी प्रदेश में से वे दोनों निकल आए, और म्लानवदन हो कर उत्तर रामचरित के मर्मवेधी वातावरण में विहार किया। और, वहाँ से वे आए 'शाकुंतल' की सुनहली, मोहिनी मिठास का अनुभव लेने, ऐसा करते-करते दोनों कहीं बीच ही में आत्म-विभोर हो पड़े। इस मनोनीत यात्रा में वह नादान किशोरी मुग्ध हो गई। और पल-पल विकसित होने वाली रसिकता से काव्य की बहुरङ्गी मजा लेने लगी। इतना ही नहीं कि उसका अन्तःकरण चित्र-विचित्र हो उठा हो, बल्कि किसी-किसी क्षण में विलास और रसनिधि के रङ्गों का मिश्रण अनायास और अनजाने होने लगा।

पाद-प्रक्षालन-कांड जिस दिन हुआ था, उस दिन की राजसभा विसर्जित होने के बाद वाली सन्ध्या को बैठे-बैठे रसनिधि ने 'विक्रमोर्वशीय नाटक' को पूरा किया।

"अब क्या चलाओगे?"

रसनिधि ने करुणामयी दृष्टि से उस किशोरी की ओर देखा; उसकी आँखें डबडबाने को हुईं।

"विलासवती, अब बस करो, बहुत हुआ। मुझे मान्यखेट में नहीं रहना है।"

विस्मित विलासवती देखती रही, "तुम कब जाने वाले हो?"

"तुम्हारे महाराज आज्ञा दें तो अभी।"

"नहीं तो?"—विलासवती ने निश्वास लिया। रसनिधि ने होंठ चाँपते हुए कहा, "नहीं तो...जब भोलानाथ की कृपा होगी तब।"

कवि की आँखें चमक रही थीं।

विलास ने फिर लंबी साँस छोड़ी, धीरे से बोली, "शिव शिव!!"

"मुझे इच्छा होती है कि शिव जी से क्षमा माँगू। मैंने तुम्हारे जीवन को व्यर्थ ही रसमय दिशा की ओर उन्मुख किया। मैं पछता रहा हूँ।"

कवि की आँखों में सहसा आँसू आ गए, उसने उन्हें पोंछ लिया।

"तुम रो क्यों रहे हो?"

"तुम्हारे लिए।" रसनिधि ने साहसपूर्वक कहा।

"मेरे लिए?" गौरव का अभिनय करते हुए किशोरी ने पूछा।

"यहाँ के जानवरों में तुम्हारा क्या हाल होगा?"

विलास के होंठ काँप उठे। रसनिधि उठ खड़ा हुआ।

"मेरा चले तो..... "

विलास को अनजाने एक लहर उठी।

"तो?..."

"तो तुम्हें अवन्ती ले जाऊँ।"

आँसुओं में तिरती आँखों से विलास देखती रही। इन तीन दिनों में इस व्यक्ति को जैसे वह पहले से ही पहचानती हो, ऐसा आभास होने लगा।

विलासवती नीचे की ओर देख रही थी; रसनिधि स्नेह भरी आँखों से विलास की ओर देखता रहा।

कुछ देर तक उनमें से कोई नहीं बोला।

"क्यों रे, यहाँ क्या कर रहा है?"

एक कठोर आवाज़ बाहर से आई।

दोनों ने घूम कर देखा—कुमार अकलंक मंदिर की सीढ़ियों के नीचे यमराज-सी भयंकर मुद्रा में खड़ा था। उसने और कुछ नहीं देखा केवल रसनिधि की स्निग्ध मुखमुद्रा देखकर ही उसे रोष चढ़ आया था।

रसनिधि ने ज़ोर से अपने होंठ चाँप लिए और मन को सावधान किया। विलास आकुल हो उठी, घूरती हुई आँखों से कुमार देखता रहा। रसनिधि भी एकटक उसकी ओर देख रहा था।

"क्या करता है?" अकलंक ने पूछा।

"तुम देख रहे हो, जो कुछ मैं कर रहा हूँ", कड़ाई से रसनिधि ने उत्तर दिया।

"मैंने कह नहीं दिया था कि यह मंदिर तुम्हारे लिए नहीं है।"

"मैं मंदिर नहीं आया था, महासामंत की कुमारी से मिलने आया था।"

"किस लिए?"—कुमार ने दाँतों तले होंठ काटते हुए कहा।

"मेरे जी में आया, मेरे प्राणरक्षक की पुत्री है, इससे मिलना तो चाहिए ही।"

इसका क्या उत्तर दे, सो कुमार को नहीं सूझा।

"विलासवती की तपस्या में विघ्न मत डाल, चल तू अपने रास्ते, चलता है कि नहीं?"

रसनिधि मुस्कराया, "तुम्हारे पिता कहें, तो अभी चल दूँ।"

"चल, अब तो जा।"

"कुमारी को लेकर जाऊँगा, लक्ष्मी देवी इसको बुलाती हैं।"

"अच्छा तू चल; यह अभी आ रही है।"

रसनिधि ने देखा, कि अब बहुत देर तक यहाँ रहना उचित नहीं, वह धीरे-धीरे सीढ़ियों से उतरा और वहाँ से जाने लगा।

अकलंक सीढ़ियाँ चढ़ आया।

"विलास इसके साथ तुम्हारा क्या प्रयोजन?"

विलास नजर को नीचे किए हुए बोली, "आदमी अच्छा है।"

अकलंक की आखों में निष्ठुर तेज छा गया, "ऐसे आदमी के साथ बोलचाल करना तैलंगण की भावी महारानी को शोभा नहीं देता।"

विलास खड़ी-खड़ी देखती रही और अंत में उसने एकदम से रो दिया, कुछ क्षण तक उसको होश नहीं रहा, कुमार स्थिर आँखों से उसकी ओर देखता रहा। विलास का अश्रुप्रवाह थोड़ा कम हुआ तो तिरस्कारपूर्वक अकलंक ने कहा, "यह है तुम्हारा वैराग्य और यह है तुम्हारी स्वस्थता!"

विलास कुछ नहीं बोली। कुमार शांत भाव से चला गया।

वह गया, तो विलास प्यासी चातकी की तरह चारों ओर रसनिधि की प्रतीक्षा में देखती रही।

२३

तप की महासिद्धि

मृणाल संध्या होने की प्रतीक्षा कर रही थी।

दुनिया में कितने ही दुःख हैं जो सहे जा सकते हैं, कितने दुःख हैं जो असह्य होते हैं। परन्तु प्रमिका को प्रेमी की प्रतीक्षा में जो वेदना होती है, वह सबसे अधिक असह्य होती है। तिस पर भी इस प्रकार की वेदना मृणाल ने अपने जीवन भर में आज पहली बार अनुभव की।

मृणाल का अभ्यास था अपने को सँभाले रखने का और दूसरे को पार लगाने का; लेकिन आज तो वह स्वयम् ही निराधार हो गई थी। ऐसा होने पर भी इस निराधारता में, इस वेदना में जो सुख समाया हुआ रहता है, उसका अनुभव मृणाल ने कभी नहीं किया था। एक नववधू के उत्साह से वह सायंकाल की प्रतीक्षा कर रही थी।

सूर्य के अस्त होने पर वह उठी। और अपने धड़कते हुए हृदय को आश्वासन देती हुई मुंज से मिलने चल दी।

कारागार के संतरियों ने राज्य-विधात्री को आते देखा, वे शीश झुका कर दूर हट गए। पाद-प्रक्षालन-कांड का समाचार सारे मान्य-खेट में फैल गया था और लोगों में यह जिज्ञासा पैदा हो रही थी कि देखें इस तूफ़ान का उपसंहार कैसे होता है।

सैनिक भी नई-नई गप्पें हाँक रहे थे। उन्हें मालूम पड़ता था कि यह बड़ी विकट समस्या है। इसलिए मृणाल का मुंज से मिलने आना उन्हें कोई विचित्र नहीं जान पड़ा।

मृणाल ने सोचा कि लोक-लाज से बचने का कोई बहाना ढूँढ़ना चाहिए; नहीं तो मेरे यहाँ आने पर लोग टीका-टिप्पणी करेंगे। उसने

वहाँ खड़े हुए नायक से पूछा, "केदारदत्त, उस पापी का क्या हाल है ?"

"ठाट से सोता है, जैसा पहले था, वैसा अब भी है।"

"कितना कठोर है, इस पापी को अच्छी सीख मिलनी चाहिए। तैलंगण का नाम बढ़े और यह उद्दंड दबे, तभी जा कर निस्तार है।"

इतना कह कर वह अंदर गई। मृणाल के स्वर में जो निश्चयात्मकता हमेशा रहती थी, वह इस समय न थी। अपने को असत्य बोलते पाया, तो उसे रोमांच हो आया।

किंतु, इस असत्य का पश्चात्ताप अधिक देर तक उसे जला नहीं सका। जैसे ही वह कारागार में घुसी कि मुंज का स्वर सुनाई दिया "क्यों आ गई न ? मैंने तो पहले ही कहा था।"

मृणाल का हृदय उन्मत्त हो गया। मुंज के स्वर की मोहिनी शक्ति से वह अपने को भूल गई। पिछली रात में उसे जिस आनंद की अनुभूति हुई थी, वह फिर व्याप्त होने लगी। उसे क्षोभ हुआ, वह लजा गई और काँपते हुए हाथों को एक दूसरे से मिला कर खड़ी हो गई। पैरों ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया।

मुंज ने हँसते हुए कहा, "अब इस तरह शरमाने से काम नहीं चलेगा मृणाल, अब तुम्हारा निस्तार नहीं।"

मृणाल ने बड़ी कोशिश की, लेकिन कुछ बोल न सकी, विचार स्थिर नहीं हुए, स्वस्थता नहीं आई। वह अपने आप पर झुँझला उठी। दिल पर क़ाबू पाने की उसकी तमाम कोशिशें बेकार गईं।

पृथ्वी वल्लभ—धरणीधर (भगवान विष्णु) के समान मृणाल के निकट आ करके खड़ा हो गया; वह सुदर्शन चक्र के समान अपने नेत्र-तेज से मानों मृणाल की रक्षा कर रहा था।

"घबरा क्यों गईं ? अब तक प्रेत थीं, अब सजीव हो गई हो।" मुंज ने हाथ फैलाए।

क्षोभ की इस स्थिति में भी मृणाल चौंक पड़ी और दो क़दम पीछे हट गई। मुंज ने अपने हाथ बढ़ा कर जोर से मृणाल को पकड़ लिया।

बुढ़ापे के किनारे खड़ी हुई महातापसी, तड़फड़ाती, काँपती भाग जाने की इच्छा से कंपित होती हुई, आनन्द की चरम सीमा का अनुभव करती हुई मृणाल ज्यों की त्यों खड़ी रही। मुंज ने जरा झुक कर उसे चूम लिया।

आनंद के मद में, पश्चात्ताप में, क्षोभ की अनिश्चित स्थिति में मृणाल ने अपनी सारी शक्ति लगा कर छूटने का प्रयत्न किया, लेकिन मुंज मुस्करा रहा था और इस तरह उसके हाथों को पकड़े हुए था, जैसे वह कोई नन्हीं बच्ची हो। आखिर मृणाल ने कहा, "कर क्या रहे हो!"

"आनंद का अनुभव कर रहा हूँ मृणाल! और तुम्हें भी करा रहा हूँ।"

मुंज फिर हँस पड़ा।

मृणाल ज़ोर से झकझोरने लगी, मुंज ने उसे छोड़ दिया वह उछल कर मानों दूर जा खड़ी हुई।

"तुम मुझे कलंकित करते हो, मुझे भ्रष्ट करते हो, मेरे तप पर पानी फेरते हो!"

गहरे साँस लेते हुए मृणाल ने यह शब्द कहे थे।

"फिर ढोंग की बात कर रही हो मृणाल! दाग़ पापियों पर पड़ता है, पतन अपवित्र होने पर होता है, और तप पर उन्हीं के पानी फिरता है, जो कमजोर होते हैं। आनन्द समाधि के अनुभव से कभी कलंक नहीं लगता, कभी भ्रष्टता नहीं आती, यह तो तप की महासिद्धि है, आनन्द की जो अरुचि होती है, उसी का नाम है रोग। बोलो, कभी ऐसे सुख का और भी कभी अनुभव किया था?"

"तुमने कैसे जाना?"

मुंज हँस पड़ा, "जो स्वस्थ रहता है, वह तुरन्त ही निरोग को पहचान लेता है। मृणाल जीवन क्षणभंगुर है, इसमें आनन्द का अनुभव करने के अतिरिक्त और किसी बात के लिए समय नहीं, मुझे देखा, जाँचा-परखा तब तुम यह बात समझी।"

जरा हँस कर मृणाल ने कहा, "मुंजराज, तुम बड़े ही अद्‌भुत हो।"

"नहीं, केवल अनुभवी हूँ और तुमको अनुभव कराने के ही लिए विधाता ने मुझे यहाँ भेजा है, नहीं तो मुझे इस कारागार में क्यों रहना पड़ता?"

मुंज ने हाथ बढ़ाए और मृणाल को पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया।

धीरे-धीरे खिच कर मृणाल फिर पृथ्वी वल्लभ के विशाल वक्षस्थल से चिपट गई।

कलंक के विचार को क्षोभ और पश्चात्ताप को मृणाल ने आज अपने हृदय से दूर कर दिया था। जीवन भर की दबी हुई तरंगें उभर आईं और आगे बढ़ कर हिलकोरें लेने लगीं।

मुंज ज्यों का त्यों सहज, गम्भीर बना हुआ था। शिप्रा नदी की तरंगों में अवन्तिका की मदालसा सुन्दरियों के साथ जिस आनन्द से वह बातें करता था, उसी आनन्द से इस अध-बुड्ढी और कुरूप तापसी से बातचीत कर रहा था।

दूर से घंटे की आवाज़ सुनाई दी और बाहर किसी के पैरों की आहट हुई। मृणाल को देश और काल का भान हुआ।

"पृथ्वी वल्लभ, अब मुझे जाना चाहिए।"

"क्यों?"

"मेरी दासियाँ जान जायँगी, तो क्या होगा? और तैलपराज...."

"भले ही जान जायँ। हम कोई जुर्म थोड़े ही कर रहे हैं?"

"मृणाल ! जीवन क्षणभंगुर है, इसमें आनन्द का अनुभव करने के अतिरिक्त और किसी बात के लिये समय नहीं।" पृ० १३२

मृणाल हँसी, उसने होंठ चबाते हुए कहा, "तुम्हारी बेशर्मी क कोई' सीमा भी है ?"

"क्या कहा ?"

"तुमको किसी की पर्वाह नहीं !"

"परवाह किस लिए हो, जो सेवक होता है, उसे पर्वाह होती है, नीच को पर्वाह होती है, हमें किस बात की पर्वाह हो, कभी शेर या शेरनी को भी शर्माते देखा है ?"

"यथार्थ में तुम पृथ्वी वल्लभ हो ।"

"यह तो मैं तुमसे और तुम्हारे भाई से कभी से कहता आ रहा हूँ ।"

"मैं तो तुम्हें पकड़ लाई, और आखिर में खुद ही फँस गई ।"

"मैं जानता था ।"

बाहर से किसी ने दरवाज़ा खोलने की कोशिश की ।

मृणाल तुरन्त पीछे हट गई, और पूछा, "कौन है ?"

केदारदत्त द्वार खोल कर अन्दर आया, "महाराज, आपको याद कर रहे हैं ।"

गम्भीरता का अभिनय करती हुई मृणाल बोली, "कह दो, आती हूँ । मुंज, मैंने जो कुछ कहा है, याद रखना ।"

मुंज ने छलिया की भाँति छँटी हुई हँसी हँस कर कहा, "तुम्हारे लिए अभी बहुत कुछ बाक़ी है । हो सका, तो फिर मिलेंगे ।"

मृणाल की प्यार भरी आँखों से एक बेधक कटाक्ष-बाण छूटा, सामने खड़े हुए, विलास-युद्ध के महारथी ने हँसते-हँसते शांतिपूर्वक उसका स्वागत किया ।

नीची नज़र झुका कर तैलंगण की राज्यविधात्री वहाँ से निकली । अब उसका हृदय आनन्द-धाराओं से धुल गया था ।

२४

भोज

नव-विवाहित व्यक्ति जिस उत्साह से जिस उमंग से अपनी नववधू को देखता है, उसी तरह मुंज मृणाल की ओर देखता रहा। जब वह चली गयी तो वह ज़रा हँसा, घूमा और निश्चिन्त हो कर सोने के लिए एक कोने में जा कर लेट गया। उसकी सेवा में हमेशा हाजिर रहने वाली निद्रादेवी कुछ ही देर में उस पर ख़ुश हो गई और वह सो गया।

थोड़ी देर बीतने पर एक आवाज़ सुनाई दी। वह धरती के नीचे से आ रही थी। मालूम हो रहा था जैसे कोई धरती को नीचे से खोदता आ रहा हो। धीरे-धीरे वह आवाज एकदम पास हो आई।

मुंज ने आहिस्ते से आँख खोली और कान लगा कर सुनने लगा—अभी पहले जहाँ वह सो रहा था, वहाँ उस पत्थर के नीचे कुछ खुदता हुआ जान पड़ा।

मुंज वहाँ से हट गया और अपने आप मुस्कराने लगा। तिरस्कार की भावना से उसके होंठ फड़कने लगे। उसने सोचा तैलप ने छिपे-छिपे उसकी हत्या के लिए इन आदमियों को भेजा है।

"बेचारे तैलप को और कोई उपाय न सूझा!"

मुंज आगे के कोने में जा कर खड़ा हो गया। पल भर के बाद पत्थर हिलने लगा, दूसरे ही क्षण वह ऊँचा उठा या और किसी ने अपना शिर नीचे से बाहर निकाला।

"महाराज!"

सहज भाव से मुंज ने पूछा, "कौन है?"

"मैं हूँ भोज।"

आगन्तुक ने चकमक पत्थर घिस कर प्रकाश किया।

"कौन ? भोज ! अरे तू यहाँ कैसे ?"

भोज, रसनिधि के नाम से सम्बोधित पुरुष ही था। मसाल को नीचे रख कर वह सुरंग से उछला और मुंज के सामने आया, तो मुंज उससे लिपट गया।

"वत्स, कहाँ से आए ?"

रसनिधि (भोज) के उत्तर देने से पहले ही, सुरंग से धनंजय और दूसरे दो-तीन कवि भी कूद कर ऊपर आ गए !"

"हा हा हा ! कैसे हो धनंजय ! हलायुध, अग्निमित्र !"

मुंज उन सबसे लिपट पड़ा।

हलायुध ने नीचे रखी हुई मसाल को ऊपर रख दिया।

"कवियो, यह क्या ?"

भोज बोला, "आप ही को बचाने के लिए महाराज।"

मुंज हँस पड़ा, "लेकिन तू आज सुबह-सुबह इन कवियों में कैसे आ गया !"

"महाराज, सेना तितर-बितर हो गई और आप जब कैदी बना लिए गये, तो मैं वेश बदल कर लोगों की भीड़ में यहाँ आ गया।"

मुंज ने कहा, "और मुझे बचाने का रास्ता खोज निकाला ! ऐसे भयंकर काम में क्यों हाथ डाला ?"

"महाराज, आपके बिना हम कैसे रह सकते हैं।"

"पगले, तो फिर तू राज्य कब करेगा ?"

"महाराज, मुझे राजलक्ष्मी की तृष्णा नहीं है।

स्नेह से हँस कर मुंज ने कहा, "जब मैंने तुझे मार डालने के लिए भेजा था, तब तो तूने कुछ और ही बात कही थी। मुझसे क्या कहा था, याद है ?"

"नैकेनापि समं गता वसुमती मुंज त्वया यास्यति।"*

भोज ने सुरंग दिखलाते हुए कहा, "सिर्फ़ इसी वजह से धरती को मैं अनाथ नहीं छोड़ सकता, चलिए।"

"लेकिन मान्यखेट से बाहर तू कैसे चलेगा?"

"इसका भी इंतजाम कर लिया है। आधे पहर में हम उज्जयिनी का रास्ता पकड़ लेंगे, चलिए, अब देर करने का काम नहीं है।"

"किस लिए यह परेशानी उठाई?"

"महाराज, बातचीत करने का समय नहीं है।"

शांत भाव से मुंज ने कहा, "क्यों नहीं है, ऐसा आनंद भला कहाँ मिल सकता है?"

"लेकिन कोई आ जायगा तो पकड़े जायँगे!"

"यह तुम कैसे जानते हो, यहाँ से निकलते समय पकड़े नहीं जायँगे? मुझे तुम किस तरह बचाने वाले थे।"

धनंजय अधीर होकर बोल उठा, "प्रभो! नगर के बाहर निकलने वाली सुरंग का पता लग गया है।"

सहज स्वाभाविक भाव से पृथ्वी वल्लभ ने कहा, "तो क्या हुआ; तुम भी ऐसे धोखे में पड़ गए। अमात्य रुद्रादित्य की वह भविष्यवाणी भूल गए? उसने क्या कहा था, यही कहा था न कि पृथ्वी वल्लभ जीवन भर में एक ही बार गोदावरी को लाँघ कर जायेगा। दुबारा नहीं। सो मैं एक बार गोदावरी लांघ चुका हूँ।"

भोज अधीर हो गया और बोला, "महाराज, भविष्यवाणी तो भगवान् भास्कराचार्य की भी सच नहीं निकली। क्या उसी के आधार पर आप यहाँ पड़े रहेंगे?"

---

*कहते हैं कि मुंज भोज को मरवाना चाहता था; अधिक लोग जब बालक भोज को मारने ले गए, तो उसने अपने चचा मुंज के लिए संदेशा दिया—यह धरती किसी के साथ नहीं गई, बड़े-बड़े राजा इसका उपभोग करके चले गए। लेकिन हे मुंज! तुम्हारे साथ यह धरती जायगी।

मुंज हँस पड़ा, "तुम बड़े उतावले हो भोज, आज मैं जा नहीं सकूँगा।"

चारों आदमी स्तब्ध हो रहे।

"और, कल तक तो न जाने क्या हो सकता है!"

लापरवाही दिखलाते हुए मुंज बोला, "अरे होगा क्या, सूर्य का उदय और अस्त होगा।"

"लेकिन आज चलने में कौन सी बाधा है!" धनंजय ने पूछा।

मुंज फिर हँस पड़ा, "अरे भाई, मुझे अभिसारिका का आदर जो करना है।"

"हैं" धनंजय और भोज चौंक उठे।

"घबरा क्यों गए? कारागार का अंधकार कहीं कामबाण को भी रोक सकता है? नहीं कविवर, जहाँ विश्वव्यापी परब्रह्म भी नहीं पहुँच सकता, वहाँ ये कामदेव के तीर आतंक पैदा कर देते हैं....।"

भोज अफसोस के मारे होंठ चबाने लगा। धनंजय पृथ्वी वल्लभ की लापरवाही देख कर स्तब्ध रह गया। उसने हँस कर पूछा, "महाराज! यहाँ ऐसा कौन मिल गया।"

'तैलंगण की महातापसी, तैलप की बहिन।"

धनंजन ने कहा, "क्या कहते हैं आप!" भोज के रोंगटे खड़े हो गए। हलायुध और अग्निमित्र ने कुछ सोचते हुए से कहा, "यह सच है, या सपना?"

'सच कहता हूँ भाई, वह बेचारी विरह की आग में जल कर खाक हुई जा रही है।"

भोज से अब चुप न रहा गया, "इस समय तो कृपा कीजिए महाराज, हम पर न सही तो अवंतिका पर ही।"

भोज को गुस्से में देख कर मुंज को हँसी आई, "बेटा, जान दी जा सकती है, लेकिन अभिसारिका का दिया हुआ वचन कहीं तोड़ा जाता है! तुम अभी लड़के हो।"

चारों आदमी एक दूसरे की ओर ताकने लगे। वे मुंज को भली भाँति जानते थे, उन्हें पता था कि वह अडिग, अडोल है।

"तो कल कब चलेंगे?"

"दो पहर रात को।"

भोज ने आखिरी कोशिश की, "एक दिन में न जाने क्या हो जाय महाराज!"

"हो जाने दो। बला से।"

भोज चुप रह गया। उसको सूझ नहीं रहा था कि इसका जवाब क्या होगा। उसने लम्बी साँस खींची।

"अच्छा। जिन्दा रहे, तो कल रात ही को देखा जायगा।"

"मैं और मृणाल···दोनों को ले चलने की तैयारी किए रहना।"

इस शान्ति को वे बर्दाश्त नहीं कर सके, चुपचाप फिर चारों सुरंग में उतर गए।

सुरंग का मुँह पत्थर से ढक कर पृथ्वी वल्लभ उसी पर सो गया। थोड़ी देर में उसे नींद आ गई।

उस ओर सुरंग में से भोज और कविगण दुखी से बाहर निकले।

भोज ने कहा, "कविवर! यह भी कोई आदमी है!"

"नहीं, देवता है।"

"मैंने तो उस समय गुस्से में कहा था कि धरती इसके साथ जायगी! लेकिन यह तो यही मान बैठे हैं कि ज़रूर जाएगी।"

"यही तो मुंज की खूबी है।"

थका हुआ धनंजय ज़मीन पर बैठ गया।

२५

मुंज

जवानी का प्यार निःस्वार्थ और पवित्र होता है; अधेड़ उमर का प्यार क्षमा और ज्ञान से भरा, बुढ़ापा इसके लिए है ही नहीं। और अगर बुढ़ापे में वह मेहमान बने तो इन चारों में से एक भी खूबी उसमें नहीं आ पाती।

यह प्रेम क्या होता है? दबी हुई हमदर्दियों का नकली तूफ़ान होता है या अत्यन्त विषयी स्वभाव की उमंगों का परिणाम। मृणालवती का प्यार इन्हीं में से किसी तरह का था, उसको एक ही चीज का ख्याल था—अपने तूफ़ानी दिल को खुश करना, उसमें कच्ची उमर की अनुभवहीन किशोरी-सी कल्पनाशक्ति और मुग्धापन नहीं था और इसीसे वह किसी कम उमर वाली प्रेमिका की भाँति प्रेमी का पूजन नहीं करती थी। उसकी मूर्त्ति का मानसिक अर्घ्य से आराधन नहीं करती थी। उसके आचार-विचारों के मनन में ही तन्मय नहीं रहती थी। विषय-वासना की तृप्ति से चतुरा बनी हुई, अनुकूलता और शान्ति का सेवन करती हुई अधेड़ प्रेमिका की भाँति भी वह प्रणयी का स्नेह से नहीं देखती थी, और न उसकी सेवा में आनंद ही मानती थी।

मृणाल में बारह वर्ष की नववधू का अज्ञान था; सत्रह वर्ष की रसिकता का असन्तोष था, प्रौढ़ा से भी अधिक मस्ती थी; वृद्धा का कल्पनाहीन अनुभवी और स्वार्थी मस्तिष्क था। ब्रह्मचारिणी का शारीरिक बल था, और उग्र तापसी की साधना थी, उसे देखने से ऐसा मालूम पड़ता था, मानो देवपद से पतित हो कर दुर्गा ने मदमत्त पशु की भूमिका में अभी तक अनुभव न की हुई, लालसाओं की परितृप्ति के लिए अवतार लिया हो।

वह परम प्रसन्नता में थी। उसका दिमाग हवा में उड़ रहा था। उसके अन्दर निर्णय हो गया था—मुंज ज़िन्दगी भर क़ैदी रहेगा, मृणाल की इच्छा होते ही तैलप उसे बन्दीगृह में सुख और सुविधा से भी रख सकता है फिर ऐसा कौन है जो उसकी प्रणयलीला में बाधा डाल सके।

मृणाल ने अपनी हमदर्दियों को प्रेम का नाम दिया। उसका यह प्रेम भी उसके स्वभाव के योग्य ही था, जैसे ही मस्तिष्क की महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने के लिए उसने पृथ्वी वल्लभ को पराजित किया था, वैसे ही हृदय की लालसा को परितृप्त करने के लिए अब उसने मुंज को विजयी बना दिया था। एक पृथ्वी वल्लभ के प्रताप से पैदा हुई थी, दूसरी उसके अनुपम सौन्दर्य से; मृणाल को ऐसा भान हुआ कि प्रतापी मुंज को बन्दीगृह में रखने से ही उसकी यह दोनों इच्छाएँ पूर्ण हो सकेंगी।

आत्म-स्तुति के इस प्रसंग में वह भूल गई कि उसके और मुंज के प्रणय-प्रसंग में विजयी कौन था। उसकी धारणा हो गई कि वह स्वयं ही विजय की अधिकारिणी थी।

रात बीती। वह उठ बैठी और उसको इच्छा हुई कि जा कर मुंज का मुँह देख आए। वह वहाँ से निकल कर कारागार के द्वार पर पहुँची।

उसे आते देख कर पहरेदार को बेचारे क़ैदी पर दया आई। उसे मालूम हुआ कि यह भयंकर राज्य-विधात्री इतनी बार मुंज के पास आती है इसका नतीजा यही होगा कि वह बुरी तरह मारा जायगा। मृणाल के स्वभाव को और उसकी राजनीति को लोग क्रूर मानते थे इसलिए प्रहरी ने सोचा कि मृणाल के आने का अभिप्राय क्रूरतारहित हो ही नहीं सकता।

मृणाल को देखते ही मुंज की आँखों से चमक निकली, जैसे उगते सूरज की किरण हो। थोड़ी देर बातचीत हुई, आँखें एक दूसरे के सामने

नाचने लगीं। मुंज ने बात चलाई "चलो" अच्छा हुआ, तुम आ गईं। इतना कह कर उसने प्यार से अपना हाथ मृणाल के कंधे पर रख दिया।

"क्यों ?"

"मैं यह सोच रहा था कि इस तरह लुक-छिप कर जिन्दगी कैसे कटेगी !"

"और दूसरा रास्ता ही कौन है ? बाद में शायद कोई तरकीब निकल आवे।"

"हम कोई बच्चे तो नहीं हैं, जो यों ही फ़िजूल समय खो दें।"

मृणाल के बालों में अपनी उँगलियाँ उलझाता हुआ मुंज बोला, "तुम्हारे भी बाल सफ़ेद हो चले हैं और मेरी उम्र भी पचास हो गई।"

"कह क्या रहे हो ? मैंने तो सोचा था कि.....।"

"कि मैं छोटी उम्र का हूँ, यही न ?"

"हाँ, न तो तुम्हारा एक बाल ही सफ़ेद हुआ है, और न कपाल ही पर बल पड़ा है, तुम तो बड़े अद्भुत हो।"

मुंज ने कहा, "जैसा दिल होता है, वैसी ही उमर भी हो जाती है। तुम यहाँ पर चैन से सुख नहीं भोग सकती।"

"क्यों ?"

"मैं ठहरा देश का दुश्मन, और तुम्हारा भाई मेरा दुश्मन ठहरा। तुमको सब लोग तपस्विनी मानते हैं और प्रजा से तुम्हें राजमाता का सम्मान प्राप्त है। ज़रा भी मालूम हो गया, तो यहाँ के लोग तुम्हें ज़िन्दा नहीं छोड़ेंगे।"

"यहाँ मुझे कौन कहने वाला है ?"

"जहाँ यह ज़ाहिर हो गया कि तुम्हारी तपस्या खंडित हो गयी, फिर कहना तो दूर, लोग तुम्हें कच्ची खा जायँगे।"

मृणाल चुप हो गई। मुंज ने स्नेह से अपना हाथ उसके कन्धे पर रखा और उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा।

"तो कौन-सा रास्ता है ?"

"एक तो यह कि तुम मुझे भूल जाओ, और अपना आडम्बर फिर फैलाओ।"

मृणाल मदभरे नेत्रों से मुंज की ओर देखती रही। उसकी आँखें साफ़ जवाब दे रही थीं कि यह रास्ता पकड़ना असम्भव है।

मृणाल के चेहरे का भाव देख कर मुंज ने कहा, "अगर यह नहीं हो सकता, तो तैलप के सिंहासन पर तुम्हीं बैठो।"

"इस समय भी तो ऐसा ही है।"

"कौन कहता है? सिंहासन के पास बैठने और सिंहासन पर बैठने में आकाश-पाताल का अन्तर है।"

मुंज के कहने का मतलब न समझ कर मृणाल ने पूछा, "सिंहासन पर कैसे बैठा जा सकता है?"

ठंडे स्वर में पृथ्वी वल्लभ ने कहा, "तैलप को मार डालो।"

मृणाल चौंक कर पीछे हट गई और बोली, "भला यह कैसे हो सकेगा?"

मधुर स्वर में मुंज बोला, "बड़ी आसानी से। जब दोपहर रात हो, तो मुझे उसके पास ले चलो, पल भर ही में वह अपने ठिकाने पहुँच जायगा।"

"ओह! लेकिन वह मेरा भाई जो ठहरा। पुत्र की तरह मैंने उसे पाला, उसका वध मैं ही कैसे करवाऊँ?"

"तो तीसरा रास्ता और भी कठिन है।"

मृणाल ने पूछा, "कौन-सा?"

"मेरे साथ निकल चलो। तुमको ले जा कर मैं अवन्ती की सम्राज्ञी बनाऊँगा।"

मृणाल फिर चौंकी। मुंज की भयङ्कर और असम्भव-सी बातों पर वह बावली-सी हो रही थी।

"कह क्या रहे हो?"

हँस कर मुंज ने मृणाल को चूम लिया और धीरे से उसके गङ्ग-जमुनी बालों की एक सफ़ेद लट उँगलियों से उठा ली।

"महाकालेश्वर भगवान् की छत्रच्छाया में ही इस भूतल का महा-प्रतापी सिंहासन है। उस पर अभी तक केवल मैं ही था। लेकिन अब हम दो जने साथ बैठ सकेंगे।"

"लेकिन मैं.....तैलप की बहिन.... ..."

"हाँ, तैलंगण के सिंहासन की अपेक्षा दूसरा एक ही सिंहासन अधिक प्रतापी है—अवंतिका का। तैलप की बहिन वहीं शोभा देगी।"

"लेकिन....."

"तो चौथा रास्ता यहाँ पर इसी तरह रहने का है इसमें मुझे कुछ नहीं, लोग तुमको क्या कहेंगे? न तुम्हारा तापसी-जीवन ही रहा और न अखण्ड आनन्द ही लूट सकी, न घर की रहीं, न घाट का।"

निश्चिन्त भाव से हँसता हुआ मुंज ज़रा आगे बढ़ा।

मृणाल देखती रही, उसे लगा कि इस तेजस्वी व्यक्ति के बिना वह जीवित नहीं रह सकती। उसने मुंज के मुख की एक-एक रेखा पर धीरे-धीरे अपनी नज़र घुमायी। उसने सोचा—इस आदमी को अपना बनाने के लिए जो भी किया जाय सो थोड़ा है।

मृणाल के कन्धे पर हाथ रख कर उसे अपनी ओर खींचते हुए मुंज ने पूछा, "क्यों, क्या सलाह है?"

भावावेश में मृणाल ने मुंज के दोनों हाथ पकड़ लिए। "पृथ्वी वल्लभ तुमने पागल बना दिया है। बोलो, क्या करूँ? अपने भाई की हत्या मुझसे असम्भव है, लेकिन अवंतिका....."

आवेग से उसका हृदय धकधक कर रहा था।

"आज रात को?"

मृणाल ने चकित हो कर पूछा, "आज रात को! सो कैसे?"

"ठीक दो पहर रात को यहाँ आना, जाने का रास्ता मिल जायगा।"

"लेकिन कैसे ?"

"देखो, अगर कामदेव को राह की ज़रूरत हो तो जेल भी उसे कहीं रोक सकता है !"

मुंज ने फिर उसको चूम कर छाती से लगा लिया।

थोड़ी देर में मृणाल अलग हो गई।

"लेकिन अवन्तिका में वहाँ तुम्हारी पटरानी तो होगी !"

मुंज खिलखिला कर हँस पड़ा। "तो क्या हुआ ? जो मेरे दिल में बस गई, वही पटरानी है।"

मृणाल फिर मुंज से लिपट गई।

मुंज बोला, "तो फिर आज रात को ज़रूर !"

"पृथ्वी वल्लभ जिस बात के लिए कह रहा हो उसको भी कोई मना कर सकता है ?"

मृणाल चली गई।

२६

लक्ष्मीदेवी की स्वीकृति

दूसरे दिन रसनिधि ने लक्ष्मीदेवी को ढूँढ़ निकाला। वह असन्तोष की मूर्त्ति बनी हुई थी। एक ओर रसनिधि के षड्यंत्र की योजना बनाने में और दूसरी ओर महासामन्त के हृदय में वर्त्तमान परिस्थिति के प्रति असन्तोष का विष-बीज बोने में व्यस्त थी।

रसनिधि के आते ही लक्ष्मीदेवी उसके पास आ गई।

"क्यों रसनिधि, अभी यहीं हो ?"

चारों ओर चतुर शिकारी की भाँति नज़र दौड़ाते हुए कवि ने कहा, "आज रात को।" तिरस्कार दिखलाती हुई लक्ष्मीदेवी बोलीं, "कल का मुहूर्त्त क्या ठीक नहीं रहा ?"

"उन्होंने इन्कार कर दिया।"

"किसने ?.....पृथ्वी....."

"हाँ।"

"क्यों ?" आश्चर्य से लक्ष्मीदेवी ने पूछा।

रसनिधि को ज़रा हँसी आ गई, "वह कारागार में बैठे-बैठे काम-बाणों से बिध गए हैं।"

"ऐसा !"

"किसी से कहिएगा मत", रसनिधि बोला, "आपकी मृणालवती हमारे महाराज पर मुग्ध हो गई हैं।"

जिस तरह अँधेरे से निकलते हुए आदमी की आँखें प्रकाश में आते ही चौंधिया जाती हैं; उसी तरह लक्ष्मीदेवी पहले तो देखती रहीं, और फिर सारा मामला समझ कर खिलखिला पड़ीं। बहुत देर तक

वह अपनी हँसी न रोक सकी। अंत में उन्होंने हँसी से आए हुए आँसू पोंछ कर कहा, "कह क्या रहे हो ?"

"सच, आज वह भी साथ जायगी।"

ज़रा हँस कर लक्ष्मीदेवी ने कहा, "चलो, अच्छा, बहुत अच्छा हुआ; और तुम भी विलास को ले जा रहे हो न ?"

रसनिधि चौंक पड़ा—"मालूम है आपको ?"

"हाँ, अगर तुमने न कहा, तो क्या मुझसे बात छिपी रह सकती है ?"

"आप आज्ञा देती हैं ?"

"तो क्या मैं मूढ़ हूँ। यहाँ पर सड़ने की अपेक्षा वहाँ रहना क्या बुरा है ?"

"सिर्फ़ यही कि तैलंगण का सिंहासन मिलने का नहीं।"

"भले आदमी, मुझे बहकाना चाहता है ! तैलंगण न सही, अवन्तिका ही सही, इसमें कौन-सी बुराई है ?"

रसनिधि—भोज—ने कहा, "देवी, क्षमा कीजिए। चाचा जी के रहते जाने कब मेरी बारी आएगी। भगवान् ही जानता है, लेकिन मेरे हृदय से तो विलासवती सम्राज्ञी हो कर रहेगी।"

"मुझे इतना ही चाहिए बेटा, जाओ, विजय करो।"

"लेकिन विलास से अभी न कहिएगा, नहीं तो वह अपने पिता या और किसी से कह देगी !"

२७

मृणाल ने रास्ता निकाला

मृणाल चंचल हो कर सोचने लगी, लेकिन कुछ तै नहीं कर सकी। मुंज ने उससे जबर्दस्ती 'हाँ' कहलवा लिया था; उसने रात को अवन्तिका चलने का वचन दे भी दिया था। मुंज की मर्मवेधिनी आँखों से आंख मिल होते ही उसके ख्यालों ने पलटा खाया। उसे यह बात अच्छी न लगी, उसका सम्मान, उसका बड़प्पन, महत्त्वाकांक्षा का क़िला—जो बहुत वर्षों का बना था, और अभी तक अधिकार हथियाने के लिए की गई कोशिशें यह सब कुछ इससे चूर-चूर हो जाते थे।

वह वृद्धा थी, उसमें चतुराई थी, वह समझ गई कि मुंज ऐसा उस्ताद है कि आँखों के इशारे से ही उसे नचाता रहेगा। अगर वह मुंज के साथ उसके राज्य में चली जायगी, तो वह ज़रूर ही कहीं की न रहेगी।

अपनी लाचारी के भयंकर अनुभव का दृश्य देख कर उसका राम-राम खड़ा हो गया। सोचने लगा—वह तापसी है, राज्य की विधाता; धरती को भी कँपा देने वाली महामाया है, तो क्या पल भर में ही वह इतनी निस्सहाय हो जायगी?

लेकिन मुंज का मोह भी बहुत बुरी तरह उसका पीछा कर रहा था। उसके बिना अकेले रहने का मृणाल में साहस बाक़ी नहीं रह गया था। वह जानती थी कि मुंज के बिना दो दिन का उसका यह रसमय संसार तहस-नहस हो जायगा। वह मुंज के लिए ही पैदा हुई थी, अब तक उसके लिए निर्जीव जीवन के सूखे जंगल में वह भटक

रही थी, अब उसी मुंज को कैसे हाथ से जाने दिया जाय ? जान-बूझ कर इस नूतन रस-रचना में आग कैसे लगा दी जाय ?

मुंज अटल था, अगर मृणाल न भी जायगी, तो भी वह जाएगा और सदा के लिए वह अकेली रह जाएगी, मूक और पंगु हो जायगी, फिर जीना भी किस काम का, सत्ता किस काम की, फिर महत्त्वाकांक्षा पूर्ण हो या नहीं, उससे क्या आता-जाता है। यह स्थिति मृणाल को मौजूदा लाचारी से भी अधिक लगी।

तो सत्ता और महत्त्वाकांक्षा को ही क्यों न खाक में मिला दिया जाय ? अकेले रहने की अपेक्षा किसी सहारे पर रहना क्या बुरा है ?

वह निश्चय पर पहुँचने लगी—उज्जयिनी जाने में ही उसका भला है, उसके हृदय की अनिश्चित स्थिति का अंत होने लगा।

एक विचार आया और मृणाल का हृदय वज्रमय पंजे में जकड़ गया। मुंज जवान था, खूबसूरत था, रसिक था, स्त्रियों को वश में करने की कला में प्रवीण था, उसकी बातों से ही मालूम होता था कि उसने अनेक हृदयों को रिझाया होगा; अपने विरह में उन्हें तड़पाया होगा। वह सौन्दर्य-भोगी था। मृणाल बुड्ढी, कुरूपा, नीरस, खूसट, रसशास्त्र से अनजान और ललित कलाओं की दुश्मन थी। उसका और मुंज का प्रेम-संबंध कब तक निभेगा, यह विचार उसके लिए बहुत ही भयंकर, बहुत ही दुखदायी और मर्मवेधी था। कौन-सा सूत्र था, जिससे यह संबंध जुड़ा था। न खूबसूरती का आकर्षण था, न रसमय जीवन में हाथ बँटाने की प्रवृत्ति थी, और न बचपन का श्रद्धापूर्ण प्रेम ! सिर्फ कच्चा धागा था, जिससे दोनों बँधे थे। वह मुंज की कीर्त्ति और खूबसूरती पर मोहित हुई थी; उसके प्रभावशाली शक्तिशील स्वभाव पर मोहित हुई थी। यह मोह कब तक ठहरेगा, क्यों ठहरेगा। उज्जयिनी जाने पर मृणाल के प्रभाव की इतिश्री हो जायगी, उसकी सत्ता का सत्यानाश हो जायगा, लेकिन अब भी तो

उसका प्रभाव और उसकी सत्ता पृथ्वी वल्लभ के पैरों के नीचे कुचली जा रही थी, तो फिर क्या होगा ?

एक संशय था जो सत्य का रूप धारण करने लगा। मुंज ने केवल क्षणिक आनन्द के लिए उसे अपने वश में किया था, इस तरह उसने अनेकों को किया होगा, जेल से निकलते ही नई जवानी से भरी इस सतरंगी दुनिया में, ज़रूरत और इच्छा के मुताबिक़ सलोनी सुंदरियाँ क्या इसे नहीं मिलेंगी, फिर क्या किया जाय ?

इतनी-सी कल्पना करने की शक्ति भी मृणाल में न रही कि मान्यखेट चला जायगा, अवन्ती चली जायगी, तैलप चला जायगा, पृथ्वी वल्लभ चला जायगा, तो फिर वह कहाँ रहेगी ?

हाथों पर माथा टेक कर मृणाल विचार-माला के मनकों को फेरती रही, अंत में तत्त्व यही निकला कि मुंज को मान्यखेट में ही रखा जाय—यही तरक़ीब सब तरह से ठीक है। अपना अधिकार रहेगा, मुंज भी क़ाबू में रहेगा, आनन्द की पराकाष्ठा तक पहुँचना भी सरल हो जायगा। ज्यों ज्यों वह सोचती गई, त्यों-त्यों उसे अपना यही विचार पसंद आता गया। पहले भी मृणाल ने ऐसा ही सोचा था, मुंज ने सिर्फ़ हँस कर उस विचार को उड़ा दिया था, इसीसे मृणाल कुछ द्विविधा में पड़ गई थी।

अब मुंज को कैसे रोका जाय ? क्या वह उससे जा कर फिर मिल आवे ? बहुत देर तक वह इसी धुन में पड़ी रही और पीछे एक निश्चय पर पहुँची।

एक दास के द्वारा कुमार अकलंक को बुलवाया।

"कुमार !"

"आज्ञा !"

"बेटा, तेरी बहादुरी को चमकाने वाला एक काम तुझे और सौंपना है।"

"क्या ?"

"मुझे एक भयानक षड्यंत्र का पता लगा है।"

"कैसा ?"

"मुंज आज रात को छुड़ा कर ले जाया जायगा।"

"ऐं !"

कुमार एक पैर पीछे हट गया, "कौन कहता है ?"

मृणाल बोली, "तुम्हारे पिता की और तुम्हारी भलाई के लिए मैं क्या-क्या नहीं पता लगाती रहती हूँ। आज दो पहर रात को उसे ले जाने के लिए आदमी आने वाले हैं।"

"कहाँ से ?"

"सुरंग से। इस षड्यंत्र को असफल कर देना है और मुंज को जाने से रोकना है।"

"जो आज्ञा।"

"लेकिन मैंने तुम्हें क्यों बुलाया है, जानते हो ?"

"नहीं।"

"मैं तुम्हारे पिता को बुला कर उन्हीं से कहती, परंतु विमल बुद्धि का परित्याग करके तैलपराज आजकल द्वेषी प्रकृति के हो गए हैं— मुंज को मार डालना चाहते हैं। विजित राजाओं के शरीर सदा अस्पर्श्य माने जायँ, यही उत्तम राजनीति है। तुम इस नीति का भली भाँति पालन करोगे इसीलिए यह काम तुम्हें सौंपती हूँ।"

"जो आज्ञा।"

"मुंज का एक भी बाल बाँका न होने पावे, नहीं तो तेरी अकलंक कीर्त्ति कलंकित हो जाएगी। समझ ले। जा बेटा, सावधानी से काम करना।"

"अब आपको कुछ ज्यादा समझाने की ज़रूरत नहीं, मैं सब समझ गया।"

कुमार अकलंक जैसी गंभीरता से आया था उसी प्रकार वापस चला गया।

२८

मध्य रात्रि

जेल से निकल जाय और मृणाल को ले चलने की उमंग मुंज के हृदय को ज़रा भी अस्वस्थ नहीं कर पाई। वह सदा की भाँति हाथ का तकिया लगाकर अर्धनिद्रित अवस्था में पड़ा रहा।

उसने आहिस्ते से आँखें खोलीं, ऐसा मालूम हुआ कि रात, दो पहर हो गई।

कुछ देर में बन्दीगृह के द्वार पर किसी के पैरों की आहट सुनाई दी। वह उस ओर देखने लगा। थोड़ी देर में आहट आना बन्द हो गया। उसे आश्चर्य हो रहा था कि अभी तक मृणाल क्यों नहीं आई।

उसी वक्त सुरंग में से किसी के खटखटाने की आवाज़ आई। किसी ने पाँच बार खट्-खट् किया था। मुंज ने भी खड़े हो कर एंड़ी से उतनी ही बार धमक दी। धीरे-धीरे सुरंग के पर का पत्थर ऊँचा उठ आया और उसमें से भोज का शिर बाहर निकला।

उसने धीमे स्वर में पूछा, "तैयार हैं न चाचा जी?"

"नहीं, अभी मृणालवती नहीं आई।"

मुंज के मुंह से ज्यों ही यह शब्द निकले त्यों ही सहसा दस-पंद्रह आदमी मसाल ले कर अंदर घुस आये।

मुंज उस ओर घूमा, और आदमियों को देख कर सावधान हो गया।

'जय महाकाल' कह कर वह सुरंग की ओर घूमा, और अपने पैर

से भोज को खिसक जाने का इशारा किया। भोज तुरन्त ही पत्थर को अपनी ओर खींच कर चला गया।

लेकिन भोज के जाते-जाते सुरंग वाला पत्थर नीचे गिरता दिखाई दे गया। अकलंक छलाँग मार कर वहाँ आ पहुँचा। एक नायक उस पत्थर को रोकने के लिए दौड़ा। उसकी उँगली बीच में आ गई और पत्थर अपनी जगह पर भली भाँति न जम सका। पाँच-छः सैनिक उसे उठाने लगे।

बीस-पच्चीस सैनिक मुंज पर झपटे और बड़ी कठिनाई से क़ाबू करके उसे बाँध पाये।

इतने में पत्थर उठ आया, कुमार ने नायक से कहा, "उस दुष्ट का पीछा करो। जहाँ तक हो, उसे ज़िन्दा पकड़ना या ख़तम कर देना।"

अकलंक मुंज की ओर देखता हुआ बोला, "पापी, यहाँ भी अपनी चतुराई दिखलाने लगा?" फिर उसने सैनिकों से कहा, "मैंने जो तलघर तैयार कराया है जाओ, उसमें इसे ले जाओ। यदि वह यहाँ से निकल गया तो अपना अन्त ही समझ लेना।"

इसके बाद मसाल लिए हुए एक आदमी को आगे करके अकलंक ने सुरग में प्रवेश किया। उसके हाथ में नंगी तलवार थी।

सैनिकों ने मुंज को ख़ूब कस कर बाँधा था और वहाँ से ले जा कर उसे तलघर में बन्द कर दिया।

तैलपराज को आधी नींद में हलका-सा एक कोलाहल सुनाई पड़ा। वह हड़बड़ा कर उठा और बिछौने पर बैठ गया, खड़ा हुआ और खिड़की खोली। जिस ओर मुंज को बंद किया गया था, उधर मसाल की रोशनी दिखाई दी। सैनिकों का स्वर सुन पड़ा। उसके कान खड़े हो गए, उसे डर हुआ कि मुंज कहीं भाग न जाय। वह तलवार ले कर नीचे उतरा। वहाँ पहुँचने पर उसे सारा समाचार मालूम हुआ। जिस तलघर में मुंज रखा गया था, तैलप वहाँ गया।

एक ओर से तैलप आया और दूसरी ओर से मृणाल। उसके क्रोध का पार न रहा। पाद-प्रक्षालन-कांड, उस समय किया गया अपमान और मृणाल के द्वारा किया गया मुंज का बचाव यह सब तैलप भूला नहीं था। अपनी बहिन पर उसे अविश्वास और द्रोह उत्पन्न हो गया। श्रद्धा घटने लगी, जासूसों से उसे यह भी पता चल गया था कि मृणाल कई बार मुंज से मिलने जाती है।

इस वक्त उसे ऐसा मालूम हुआ कि तैलप के अनजाने मृणाल ही मुंज के भगाने की कोशिश कर रही है, और इसलिए वह अभी आई है। तैलप के क्रोध की सीमा न रही। मातृ-तुल्य बहिन के प्रति उसका जो सम्मान और प्रेम था, वह इस समय लुप्त हो गया।

उसने कड़कती आवाज़ में पूछा, "तुम यहाँ क्यों आई हो?"

इस अनोखे ढंग से अपने को संबोधित होते देख कर उसने भी गुस्सा भरी निगाह से ऊपर देखा लेकिन उसके दिल में तो चोर बैठा था और इस समय तैलप को पा कर मानों उसके होश उड़ गए।

बड़ी मुश्किल से बोली, "मुंज से मिलने के लिए।"

"इस वक्त नहीं मिल सकती, चली जाओ। क़ैदियों से मिलने का यह समय नहीं।"

मृणाल का गौरव चूर-चूर हो गया। इस अपमान से उसकी आँखों में जहर छा गया।

उसने शिर उठा कर पूछा, "कह क्या रहा है?"

"जो कह रहा हूँ ठीक ही कह रहा हूँ।"

मृणाल ने देखा कि इस समय तैलप पर गुस्से का भूत सवार है। उसने सोचा कि ऐसे कुअवसर पर उससे वाद-विवाद करना और सो भी सैनिकों के सामने अच्छा नहीं।

"अच्छा तो सुबह मुझसे मिलियो।"

तिरस्कार से तैलप ने कहा, "अच्छा!"

मृणाल वहाँ से उल्टे पाँव लौट गई। वह पछता रही थी।

मृणाल के चले जाने पर तैलप ने तलघरे का द्वार खुलवाया और मसालची के साथ अंदर गया। मुंज ज़मीन पर पड़ा था, उसके हाथ-पैर जकड़े हुए थे।

तिरस्कार और क्रोध मे तैलप ने पूछा, "क्यों मुंज, क्या हाल है?"

"बड़ा अच्छा, बड़ा आनन्द!" मुंज ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

"अवंतिका भाग जाना चाहता था, क्यों?"

"भला इसमें भी तुम्हें पूछने की ज़रूरत थी।"

"तो फिर रह क्यों गए?"

"मुझे किसी ने रोका नहीं। अपनी ही इच्छा से मैं रह गया हूँ, और इसीलिए मुझे ऐसा रास्ता पकड़ना पड़ा कि मैं रह गया।"

तैलप की समझ में खाक भी न आया। उसने गुस्से से कहा, "अच्छा, अब तेरे पाप का घड़ा भर गया है। अब तुझे हाथी के पैरों से कुचलता हूँ, देख तो!"

मुंज के मुख पर उपेक्षा भरी हँसी छा गई, "तेरी इस धमकी को सुन-सुन कर ओह! मैं कितना आकुला गया हूँ।"

तैलप ने सोचा कि सैनिकों के सामने इससे अधिक बातचीत मेरे गौरव को घटाएगी ही। इसलिए उसने संक्षेप में ही कहा, "अब यह आकुलता बहुत दिन तक न रहेगी।.....सैनिको, इस पापी की देखभाल भली-भाँति करना, नहीं तो तुम्हारी खाल खिंचवा ली जायगी।" तैलप वापस जाने के लिए लौटा।

मुंज का हास्यपूर्ण स्वर सुनाई पड़ा, "मेरा वध भले ही करा देना, पर इस मस्तक को जो शोभा दे, इस प्रकार कराना!"

२६

षड्यंत्रकारियों की खोज

अपराधी को पकड़ने के लिए कुमार व्याकुल हो उठा और रोष में भरा सुरंग में दौड़ने लगा। अपराधी को खतम कर देने की लालसा उसकी नसनस को स्पंदित कर रही थी।

थोड़ी ही देर में हवा के हल्के झोंकों का अनुभव हुआ। मसाल की लौ थिरक उठी, सुरंग का दरवाज़ा आ गया था. सुरंग का दूसरा द्वार महासामन्त के उद्यान में निकलता था। अकलंक जब सुरंग से बाहर आया, तो वहाँ उसने किसी को नहीं देखा।

मसाल के कारण वह तो सब को दिखाई दे सकता है किन्तु प्रकाश की चकाचौंध से दूसरे आदमी कुमार को नहीं दिखलाई पड़ते थे। इसलिए उसने मसाल को बुझवा दिया।

इतने में ही सुरंग से आठ-दस सैनिक और आ पहुँचे उनको कुमार ने भिन्न-भिन्न दिशा में अपराधी का पता लगाने भेजा। स्वयम् महासामन्त के महल की ओर गया। वहाँ चबूतरे पर लक्ष्मीदेवी खड़ी थी. कुमार भी वहाँ जा कर खड़ा हो गया।

"देवी, इस ओर से किसी को भागते देखा है।"

उपेक्षा का भाव दिखलाते हुए लक्ष्मी ने कहा. "कौन कुमार! अरे, तुम कैसे यहाँ आए!"

"किसी को जाते देखा है, कुछ दुष्टों ने आज बहुत बड़ा अनर्थ करना चाहा था, वे अभी-अभी निकल भागे हैं।"

लक्ष्मीदेवी ने भोली-भाली बन कर पूछा. "कौन, जो अभी तुम्हारे पास खड़े थे?"

'नहीं, वे नहीं, दूसरे।"

एक सैनिक ने हल्ला किया, "यह कोई जा रहा है महाराज!"

अकलंक शेर की तरह झपट कर दौड़ा, अँधेरे में कुछ दूर पर किसी को शिवालय के पास जाते देखा—उसके कंधे पर कुछ रखा हुआ मालूम हुआ।

भागते हुए उसके पैरों से कोई कुचल गया—एक चीख सुनाई पड़ी। अकलंक रुका और देखने लगा। उसे स्वर कुछ परिचित-सा मालूम हुआ। उसने चौंक कर पूछा, "नरसिंह?"

ज़मीन पर पड़े सैनिक ने रुंधी आवाज़ में कहा, "हाँ, महाराज, भाग गया वह विलासवती को ले कर भाग गया। ...उस मन्दिर में ... आह ...मुझे मार डाला....आह"

सैनिक के अन्तिम शब्द सुनने के लिए कुमार खड़ा नहीं रहा, उसके कुछ ही शब्दों से वह बहुत कुछ समझ गया था। विलास को ले जाने वाला और मुंज को छुड़ाने की कोशिश करने वाला रसनिधि ही होगा। कुमार को यह भी मालूम था कि शिवालय में से हो कर नगर के बाहर जाने की एक सुरंग है। उसे विश्वास हो गया कि उसी रास्ते रसनिधि भागा जा रहा है।

अकलंक के हाथों और पैरों में हज़ार गुनी ताक़त आ गई। कुछ ही देर में वह मन्दिर के अन्दर जा पहुँचा। चारों ओर निगाह डाली, लेकिन वहाँ कोई न था। सुरंग के मुँह का उसे पता नहीं था किन्तु ज़रा ग़ौर से देखने पर नन्दी उसे टेढ़ा मालूम पड़ा। नन्दी को कोई इसी तरह खड़ा कर गया था, उसके अलग होते ही सुरंग का द्वार दिखाई पड़ा। द्वार के अन्दर घुसते ही नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ दिखाई दीं।

बिना आगा-पीछा सोचे अकलंक सुरंग में घुस गया। रसनिधि से द्वेष तो उसे पहले से ही था। अब वह विलास को भगाए जा रहा है, राजकुमार की स्त्री का अपहरण राजद्रोह है। कुमार राजद्रोही का पीछा

करेगा, तैलप की क्रूरता और मृणाल की कठोरता इन दोनों का असर उसके खून में था; शुष्क नियमों द्वारा उसे शिक्षा दी गई थी। इस तरह कुमार सत्याश्रय का स्वभाव सहज ही भयंकर था ही, और इस समय तो वह किसी ओर नहीं देख रहा था, वह सिर्फ़ रसनिधि के खून से अपनी तलवार की प्यास बुझाना चाहता था।

अँधेरे में भटकता और ठोकरें खाता कुमार जल्दी से आगे बढ़ा। चारों ओर भयानक अन्धकार था। सिर्फ़ हाथों और पैरों से टटोल कर आगे बढ़ना सम्भव था।

ज़रा और आगे बढ़ने पर उसे एक स्वर सुनाई पड़ा। कोई धीरे-धीरे सुरंग की दीवारों से टकराता हुआ आगे बढ़ रहा था। कुमार के हर्ष का पार न रहा, वह और उत्साह से आगे बढ़ने लगा।

एकाएक कुमार की देह दीवार से टकराई। राह संकड़ी होने लगी, इतनी संकड़ी कि एक ही आदमी सीधा होकर उसमें से जा सकता था। पीछे दौड़ना मुश्किल था लेकिन यह मालूम हुआ कि आगे-आगे जाने वाले आदमी की कठिनाई और भी बढ़ेगी। कुमार नंगी तलवार को सीधी करके आगे बढ़ा। सुरंग की तङ्ग राह में रसनिधि बुरी तरह फँस गया था। विलास बेहोश हो गई थी और इस संकड़ी राह में उसे कंधे पर ले कर भी नहीं जाया जा सकता था। इस पर भी रसनिधि उसको कभी उठा कर, कभी घसीट कर और कभी मूर्च्छित होने पर भी आगे ढकेल कर कठिनाई से जा रहा था। थोड़ी देर में वह रुक गया। पीछे से किसी की आहट आई और क्रमशः निकट आती गई। रसनिधि ने सोचा कि इस तरह चलने से, पीछा करने वाला आदमी आसानी से अपना शिकार बना लेगा।

रसनिधि ने मूर्च्छित विलास को दीवार के सहारे रास्ते पर बैठा दिया। स्वयम् पीछे घूम गया। उसके हाथ में नंगी तलवार थी, उसने डपट कर पूछा, "कौन है?"

अकलंक बहुत नज़दीक आ गया था, वह रसनिधि का यह सवाल सुनकर चौंका। दूसरे ही क्षण सावधान हुआ और आगे आ कर बोला, "मैं हूँ तेरा काल !"

"तो ले, मैं भी तैयार हूँ।"

रसनिधि कुमार की ओर बढ़ा।

पल भर में दो तलवारें लड़ गईं, उनसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। किन्तु विनाश के लिए लड़ती हुई दोनों तलवारें दीवाल से टकरा गईं, और उनके टुकड़े-टुकड़े हो गए।

दोनों कुशल योद्धा थे। तलवार की परवाह न की और एक-दूसरे पर टूट पड़े।

इस युद्ध में प्राणों की बाज़ी लगी थी। एक सकरी सुरंग में जहाँ केवल एक प्राणी ज़मान पर सरक-सरक कर सीधा चल सकता था वहाँ दो प्राणियों का ताण्डव नृत्य होने लगा। दीवार से माथा टकराता था, कोहनी छिल जाती थी और हाड्डियाँ पत्थरों से टकरा कर बोल उठती थीं, फिर भी वे दोनों जवान उस भयंकर निविड़ अंधकार में, एक अद्भुत महायुद्ध मचा रहे थे।

दोनों ने एक दूसरे के प्राण लेने की प्रतिज्ञा कर ली थी—दोनों के हृदय में यही विश्वास था कि वे संसार में तभी जीवित रह सकते हैं जब कि उस युद्ध में उनकी विजय हो।

रसनिधि का क़द छोटा था - अकलंक लम्बा और विशालकाय था पर रसनिधि में एक चतुर खिलाड़ी की कला थी। वह पहले तो कुमार अकलंक के क्रोधमय आक्रमण के सामने पीछे हटा पर फिर धीरे-धीरे उसकी कला ने उसकी सहायता की। दोनों बहुत देर तक जूझे पर किसी ने भी पराजय स्वीकार नहीं की। कुमार की श्वास भरी रही था, और चालाक रसनिधि समय को बिताता हुआ एकमात्र अपना बचाव ही कर रहा था।

अकलंक समझ गया। श्वास फूलने से पहले ही उसने दुश्मन का

रामशरण पहुँचाने का एक असफल प्रयत्न किया, पर कुछ भी न बना सका। मालवी योद्धा, एक चतुर खिलाड़ी योद्धा था। थोड़ी देर में उसने कुमार को एक कोने में दबोच लिया—और दूसरे ही पल उस पर चढ़ बैठा।

रसनिधि ने एक शांति की श्वास ली और फिर बोला, "बोल पापा, किसका काल आया!"

कुमार कुछ न बोला। मरत समय यह पराजय उसे असह्य वेदना पहुँचा रहा थी।

"ऐसा जी में आता है, कि सात पीढ़ियों तक का बदला निकालूँ।"

"निकालो न, मैं अब जीवित रहूं या मर जाऊँ इसका मुझे पर्वाह नहीं।"

"तुझे इस तरह मारने म तो मेरा कीर्ति कलंकित हो जायेगा और लोग कहेंगे कौन जाने कैसे मर गया।"

"ले काम तमाम कर दे, यह रहा मेरा गला इसे घोट दे। तुझ जैसे कायर को यही सुशोभित होगा" तिरस्कार से अकलक ने कहा।

"अकलक! अभी अवंती के परमार को कायर ठहराने वाला पृथ्वी मे जन्मा नही। अपने गर्व की बात मत कर और देख, यदि तू मान्यखेट का युवराज है तो मैं अवंती का हूँ।"

"कौन भोज!"

"हाँ, तुझे मारूंगा तो भरे युद्ध में, इस प्रकार अधकार में मार कर मै उस यश से वञ्चित नहीं रह सकता। जा, इसी कारण से छोड़े देता हूँ, पर एक शर्त है।"

"क्या!"

"कि शांति से चुपचाप जिस रास्ते से आया है उसी रास्ते वापिस लौट जा।"

"इस शर्त की आवश्यकता ही क्या है! अब दूसरा रास्ता ही कहाँ ? क्योंकि बाहर के द्वार पर तो तुम्हारे साथी होंगे।"

"पर फिर पीछे पड़ा तो!"

कुमार क्षण भर के लिए चुप रहा, उसे लगा कि फिर इसी प्रकार का युद्ध करना निरर्थक है। इसलिये बोला—

"नहीं पड़ूँगा।"

"वचन दो।"

"हाँ दिये।"

"ठीक," कह कर भोज उठा।

लड़खड़ाता हुआ और धूल झाड़ता हुआ अकलंकचरित खड़ा हो गया।

"चले जाओ अब!"

"हाँ चला," कह कर अकलंक कुछ विनम्र हो गया हो, ऐसा लगा।

भोज हँसा, "जीत गया इसकी याद में तलवार की म्यान लिये जा रहा है क्या?"

कुमार ने जवाब नहीं दिया, थोड़ी दूर चल कर वह गिर गया हो, ऐसा लगा। थोड़ी देर तक वह पड़ा रहा।

भोज के हृदय में शङ्का हुई, "क्यों, उठाने के लिये आऊँ क्या?"

अकलंक ने जवाब नहीं दिया। थोड़ी देर बाद वह उठा और दौड़ते हुए चल दिया।

उसके दौड़ने की प्रतिध्वनि ज्यों ही लुप्त हुई भोज नीचे झुका और विलास की खोज आरम्भ की। उसे ऐसा लगा कि लड़ते लड़ते वह और कुमार उस स्थान से बहुत आगे बढ़ गये थे जहाँ विलास को सुलाया था। उसने पीछे लौट कर अपने हाथों से टटोलना आरम्भ किया। युद्ध में थक जाने के कारण उसका सिर फिरने लगा था और इस कारण से उसको खोज पा लेना और भी कठिन हो गया था। थोड़ी देर बाद विलास का पैर उसके हाथ आया। उसने तुरन्त उसको कमर पर से पकड़ा और दोनों हाथों पर अपनी प्रियतमा को उठा कर, झपाटे से चलने लगा।

"विलास! प्रियतमे! इस राक्षस के चंगुल से अच्छी छूटी।"

३०

विलास कैसे छूटी ?

भोज पच्चीस क़दम चला उसका सर घूमना रुक गया और उसकी चेतना लौट आई।

वह सहसा चौंक पड़ा. उसको विलास बहुत हलकी लगी। उसने होंठ काट कर अपनी स्वाभाविक अवस्था को बनाये रखने का प्रयत्न किया।

वह भयभीत हो उठा, उसका बायाँ हाथ जो विलास की पीठ के नीचे था उस पर पानी बह कर आ रहा हो ऐसा आभास हुआ। पानी—रक्त—इतना अधिक ! भोज का हृदय सहम गया—उसके पैर काँपने लगे—वह खड़ा रह गया।

उसने बड़ी मुश्किल से विलास को सीधा किया। रक्त कहाँ से आ रहा है यह देखने के लिए अपना हाथ फैलाया और एक करुण चीत्कार से सुरंग गूँज उठी।

विलास का कंधे से ऊपर का भाग शरीर पर नहीं था। जहाँ गर्दन होनी चाहिये वहाँ गर्दन के स्थान पर रक्त ढल-ढल कर बाहर बह रहा था।

भोज को भान हुआ कि उसके हाथ में एकमात्र विलास का धड़ ही था। उसका रोम-रोम काँप उठा और हाथ से धड़ पृथ्वी पर गिर पड़ा।

वह निस्तब्ध हो गया, पागल की तरह इधर-उधर देखता रहा, उसके हृदय में एक अनिर्वचनीय शोक फैल गया। वह रक्त से सना हुआ हाथ माथे पर रख कर एक असह्य वेदना से आकुंद कर उठा।

एकदम सामने से किसी के दौड़ कर आते हुए क़दम सुनाई दिये और साथ ही मशाल का उजेला भी आया। थोड़ी देर बाद हाथ में मशाल ले कर धनंजय को आते देखा। उसके पीछे कुछ और कवि थे। भोज को आने में विलम्ब हो गया था और इसीलिये वे उसकी खोज करने आये थे, "महाराज! महाराज!"

धनंजय पास आया, किसी का आर्तनाद सुन कर रुक गया। वह थोड़ा आगे बढ़ा और सहसा चिल्ला उठा, "अरे मेरे बाप!" उसके हाथ से मशाल गिर गई।

उसकी आँखों के सामने कोई रक्त-स्नात मनुष्य खड़ा था और पृथ्वी पर पड़े हुए एक शव से रक्त की धारा बह रही थी।

धनंजय साहसी था, जहाँ मानवी साहस का ही सब परिणाम हो वहाँ इस समय उसे लगा जैसे साक्षात् भैरव उसके सामने खड़ा हो।

पर भोज ने उसको पहचान लिया, "धनञ्जय! धनञ्जय! भाई!"

धनञ्जय को होश आया, उसकी हिम्मत लौटी, उसने पृथ्वी पर पड़ी हुई मशाल उठा ली।

"कौन? युवराज! क्या बात है?"

"धनञ्जय! यह देखा?" जैसे-तैसे भोज ने कहा और विलास के धड़ की तरफ़ अँगुली उठायी।

"क्या है?"

"विलास का धड़।"

"पर महाराज कहाँ हैं?"

"महाराज, कारागृह में जैसे ही मैं तलगर्भ में महाराज को लेने पहुँचा कि अकलंक चरित और उसके आदमी कारागृह का द्वार खोल कर मुझ पर टूट पड़े। महाराज पकड़ लिये गये, मैंने पत्थर से सुरंग का द्वार बन्द कर वापिस हो लिया, पर अकलंक ने मेरा पीछा किया।" वह श्वास लेने के लिये रुका।

"फिर !"

"मैं तुरन्त लक्ष्मीदेवी के पास से विलास को ले आया। वह बेहोश हो गई थी, उसे उठा कर मैं मन्दिर की सुरंग में घुसा। मेरे पीछे अकलंक आया और इस तलगर्भ में द्वन्द्वयुद्ध हुआ। मेरी विजय हुई, मैंने अकलंक को छोड़ दिया, उसने धोखा न देने का वचन दिया। पापी गया तो, पर जाते-जाते मेरी विलास का सिर काट कर ले गया।"

"हैं !" धनञ्जय और उसके पीछे खड़े कवि चकित रह गये।

"ठीक मैं अब समझ गया, यह कमज़ात, नीच जब चलते-चलते रुका था तभी उसने यह किया। अब चलना चाहिये" यह कह कर उसने मशाल ली और फिर पीछे चल दिया।

वे थोड़ी दूर तक चले, उन्हें अपने युद्ध का स्थान मिला, पर वहाँ दो तलवारों में से एक ही तलवार की मूठ का भाग और दो तलवारों के आगे का भाग पड़ा था। एक कोने में जहाँ विलास को सुलाया था वहाँ एक रक्त से भरा हुआ छोटा-सा गड्ढा था।

चुपचाप सब वापिस लौट आये। विलास का धड़ उठा लिया, और थोड़ी देर में सुरंग से बाहर आ गये।

वहाँ सब घोड़ों पर सवार हुए और शीघ्रता से यात्रा करते हुए गोदावरी के समीप आ गये।

वहाँ चिता तैयार कराई और भोज ने विलास के धड़ को अग्नि-दाह दिया। भोज का रोम-रोम जल रहा था और जैसी आग विलास के धड़ को लगी थी वैसी ही आग में भोज भी जल रहा था और कह रहा था, "विलास के रक्त की बूँद-बूँद का हिसाब लूँगा, याद रखना !"

दूसरे ही क्षण उसे विलास याद आई, उस काव्य रसिका का म्लान किन्तु मनोहर मुख आँखों के सामने आ खड़ा हुआ, उसका हृदय भर आया और वह हिचकियाँ भर-भर कर रोने लगा।

"युवराज ! पर अब क्या ?" धनञ्जय ने पूछा।

"हाँ अब क्या ? अवन्ती का रास्ता..."

"पर महाराज का क्या होगा ?"

शोक और उदासी में भोज ने गर्दन हिला दी, "हो न हो रुद्रादित्य का वचन सत्य हो जाये। 'मुझ गोदावरी एक ही बार पार करेगा, दूसरी बार नहीं' यह तो अब मान्यखेट में ही मरेगा।"

"अपने को कुछ पता तो निकालना चाहिये। एक काम करो, गोदावरी को पार कर दो-चार दिन छिपे बेश में रह कर भेद निकालना चाहिये।"

"हाँ, मुझे कोई आपत्ति नहीं, पर अब महाराज को मुक्त कर दिया जाय ऐसा नहीं लगता।"

विलास की राख का गोदावरी में विसर्जन किया गया और गोदावरी पार कर एक पास वाले गाँव की ओर गये।

यह गाँव भिन्न-भिन्न रास्तों के संगम पर था। वहाँ उतर कर उन्होंने विश्राम लिया, वे विश्राम ले भी न पाये थे कि गोदावरी के उस पार दो-सौ-तीन-सौ आदमियों की एक टुकड़ी जमा होने लगी।

भोज और उसके मालवी योद्धाओं ने यह टुकड़ी देखी और उनकी आशाओं पर तुषारपात हो गया। उनको ऐसा लगा कि तैलप ने इन आदमियों को उन्हें पकड़ने के लिये भेजा है, पर जैसे-जैसे वे नदी के किनारे आने लगे कि धनंजय ने आगे आते हुए योद्धा को पहचान लिया "महासामंत।"

"लक्ष्मीदेवी !" भोज ने कहा।

सब मालवी वीर देख रहे थे कि सामने आते हुए मनुष्यों में आगे-आगे दो घोड़ों पर महासामत और लक्ष्मीदेवी थे।

पर सब का विकराल वेष था। महासामंत के एक हाथ में परशा था और दूसरे में एक महान खड्ग, उसके मुख पर रक्त-सिक्त घाव थे और उनके घोड़े भी खून में नहाये हुए थे।

लक्ष्मीदेवी का स्वरूप चंडिका के सदृश भयानक था। उसके एक हाथ में खून से सनी हुई लाल-लाल लपलपाती हुई तलवार थी और शरीर खून से भीगा हुआ था। उसने जीन के साथ एक गर्दन बाँध रक्खी थी। जैसा रूप इन दोनों का था वैसा ही समस्त सैनिकों का भी था। प्रत्येक के हाथ में नंगी तलवारें थीं, प्रत्येक के हृदय का खून खौल रहा था और प्रत्येक का मुख-मुद्रा पर विभीषिका की स्पष्ट छाप थी।

"धनञ्जय, ये हमको पकड़ने नहीं आये, पर युद्ध में से लौटते हुए मालूम होते हैं" भोज ने कहा।

इतने में महासामंत ने 'जय स्थूनेश्वर' कह कर घोड़े को एड़ लगाई और नदी में कूद गये; उनके पीछे लक्ष्मीदेवी तथा अन्य सैनिकों ने भी ऐसा ही किया।

इस ओर भोज और उसके सवार घोड़े पर चढ़ कर, भाग जायें या न भागें, इसी असमञ्जस में पड़े हुए थे, इतने में जैसे ही महासामंत नदी के इस पार आया कि उसने भोज को पहचान लिया।

"रसनिधि !"

"महासामंत ! तुम कहाँ से ?" कह कर वह अपना घोड़ा महासामंत के घोड़े के पास ले आया।

"मैं स्थून देश जा रहा हूँ।"

इतने में लक्ष्मीदेवी का घोड़ा भी नदी को पार कर वहाँ आने लगा।

"भोजराज ! अब यह महासामंत नहीं स्थून देश का महाराजाधिराज भिल्लमराज हैं —"

लक्ष्मीदेवी की आँखों में रक्तिमा थी और वे फटी हुई थीं। उसके होठ दबे हुए थे और उसके प्रत्येक अंग में आवेश और क्रोध व्याप्त हो रहा था। रसनिधि इस भयंकर मूर्ति को देखता रहा और देखते-देखते उसकी दृष्टि लक्ष्मीदेवी का जीन पर लटके हुए सिर पर पड़ी।

विकराल लक्ष्मीदेवी ने भयंकर हँसी हँस कर उस सर को चोटी पकड़ कर ऊपर उठा लिया।

"और यह है स्यूनाधिपति की विजय ध्वजा" लक्ष्मीदेवी स्मशान के अद्‌भुत भूत की तरह खिलखिला कर हँस पड़ी।

भोज ने यह मुख देखा-पहचाना। उस मुख पर विलास की मुखमुद्रा अंकित थी।

वह काँप उठा। आँखों में अँधेरा छा गया। उसकी चेतना जाती रही, और वह घोड़े पर से पृथ्वी पर गिर गया।

३१

लक्ष्मीदेवी ने तैलंगण क्यों छोड़ा ?

अकलंक चरित के गर्विष्ठ स्वभाव को एक करारी चोट पहुँची थी, वह इस समय विवश हो गया था, असहाय हो गया था, पर फिर भी उसके हृदय में हलाहल विष व्याप्त था।

इतने में उसने ठोकर खायी और एक टूटी हुई तलवार का आधा हिस्सा हाथ आया। उसे ले कर वह आगे बढ़ा, दो क़दम चल कर उसने फिर ठोकर खायी और बेहोश हो कर विलास के शरीर पर गिर पड़ा।

उसकी पराजय हुई थी, उसका मान भंग हुआ था, यह सब वह सह सकता था, पर भोज विलास को ले जाय यह मान-भंग उसके लिये असह्य था, बदला लेने के लिये उत्सुक, उसके हृदय में एक विचार आया। और विचार आते ही उसे कार्यरूप में भी परिणत कर दिया—तलवार के आधे भाग से विलास की गर्दन काट कर हाथ में उठा ली।

यह घोर कर्म कर वह आगे बढ़ा, उसके हृदय का बोझ हलका हुआ—एक प्रकार से वह पापी भोज और नमकहराम विलास को दण्ड दे सका था।

थोड़ी दूर आगे उसे मशाल लिये हुए सैनिक मिले जो उसकी खोज करने निकले थे। विलास का सिर हाथ में लिये हुए रक्त-स्नात कुमार को आता हुआ देख कर वे चौंक कर खड़े हो गये—उनके कठोर हृदय भी काँप उठे।

"वापिस लौट चलो।" कुमार ने कहा।

इस आज्ञा का सम्मान करते हुए सैनिक पीछे लौट गये और धीरे-धीरे पीछे आये। वहाँ तैलप और भिल्लम थोड़े योद्धाओं के साथ उसकी प्रतीक्षा में थे। कुमार को रक्त-स्नात और हाथ में टपकता हुआ सिर लाते देख कर सब सहसा घबरा कर पीछे हट गये।

"यह क्या ?" तैलप ने भौं चढ़ा कर पूछा।

"यह—" कह कर अकलंक ने सिर धर दिया, "जो पापिनी मुझे छोड़ कर भोज के साथ भागी जा रही थी उसका सिर।"

"विलास—" आँखें फाड़ कर भिल्लम ने कहा।

"हाँ, तैलंगण की भावी सम्राज्ञी" कठोर हृदय कर कुमार क्रूरता से हँस कर बोला, "अपने काका मुंज को भगा कर ले जाने में जब भोज असफल रहा तो उसको ले कर भाग निकला। मैंने उसे पकड़ने का प्रयत्न किया, पर उलटे उसने मुझे पकड़ लिया, मुझे हराया और फिर मुझे मुक्त भी कर दिया, पीछे लौटते हुए मैं इसका सिर काट लाया।"

"किसका सिर ?" मृणालवती की आवाज़ आई, वह, जक्कला देवी और लक्ष्मी थोड़े सैनिकों के साथ यहाँ आ पहुँची थीं।

"विलास का" कह उसने सिर को मशाल के प्रकाश में धर दिया। विलास का मुख भयानक निश्चलता से सबकी ओर देख रहा था।

पल भर के लिये भयानक नीरवता फैली रही।

स्यूनराज होठ पर होठ दबाये, अंधकारमय हृदय से पागल की तरह आँखें फाड़ कर देखता रहा, उसकी विचार-शक्ति कुंठित हो गई थी।

मशाल के वर्तुलाकार प्रकाश में सहसा कोई कूदा और अकलंक के हाथ से विलास का सिर छीन लिया।

"मेरी विलास का सिर !" लक्ष्मीदेवी ने गर्जना की।

उसने सिर ऊँचा किया और धीरे से, विलास का निर्दोष मुख, सुकोमल मुख रेखायें तथा सुंदर नयनों का निर्जीव निश्चलता पर दृष्टि डाली। सब उसकी ओर देख रहे थे—बीच में बोलने की किसी को भी हिम्मत न हुई।

लक्ष्मीदेवी की मूर्ति इस समय, महिषासुर-मर्दिनी चण्डिका के सदृश हो रही थी, उसकी फटी हुई आँखों में से आग बरस रही थी। उसके मुख पर प्रलयंकारी कोप तथा दुःसह तेज दिखाई दे रहा था। उसका शरीर शस्त्र की भाँति श्वेत हो गया था, पर फिर भी वह एकमात्र अपने शरीर से निकलती हुई क्रोध की ज्वाला से सबको जला रही थी।

"मेरी बच्ची को तूने मारा ?" उसने एकदम कुमार से पूछा।

कुँवर तुरन्त जवाब न दे सका।

"चलो अब—" तैलपराज उठते हुए तूफ़ान को शांत करने के लिये बोला।

लक्ष्मीदेवी बीच में ही बोल उठा, "भिल्लमराज! देखा! अकलंक चरित के पैरों का धूल सिर पर रक्खा कि तुम्हारी इकलौती बेटी का सिर काट लाया।" उसने आँखें फाड़ कर अपने पति की ओर देखा, वह बेचारा योद्धा विस्मित-सा देखता रहा। वह क्रोधावेश में उसकी तरफ़ फिरी, "धिक्कार है तुम्हारे जैसे कायर को!! तुम्हारे हाथों में आग लग गई क्या ? तुम अपने शस्त्र कहाँ बेच आये ? इस पिशाच ने तुम्हारी इकलौती बेटी का सिर काट डाला। तुममें इसका सिर काटने की शक्ति नहीं ? क्या देखते हो ? देखते क्या हो !" उसकी आवाज़ में स्वाभाविक तिरस्कार और क्रोध समाया हुआ था।

भिल्लम के मस्तक पर सलवटें पड़ गईं, पर वह कुछ भी कह न सका। एकमात्र लक्ष्मीदेवी के मुख को ओर देखता रहा।

"लक्ष्मी! यह क्या बकती है!" मृणालवती ने हमेशा की तरह सत्तावाही आवाज़ में कहा। "ज़रा होश रख।"

"होश ! होश !" लक्ष्मीदेवी के आवेश का आक्रमण मृणाल पर भी हुआ, "मेरी बच्ची ने क्या अपराध किया था ? इसी समय मुंज के साथ मालवा तो तुम भी भाग जाने वाली थीं ! पर तुम्हारा सिर धड़ से अलग नहीं हुआ, कारण कि तुम तैलपराज की बहिन हो; और इसका सिर धड़ से अलग हो गया है, कारण कि यह स्यूनदेश के कंगाल और कायर राजा की लड़की थी, क्यों ?"

जैसे बिजली गिर पड़ी हो इस प्रकार सब चौंक पड़े और एक दूसरे के मुख की ओर देखने लगे। तैलप सबसे पहले सावधान हुआ, उसे भान हुआ कि सैनिकों के सामने यह फजेता हो तो ठीक नहीं, उसने भिल्लम से कहा, "महासामंत. लक्ष्मीदेवी को ले जाओ।"

वह एक क़दम आगे आई और पगली हो गई हो इस प्रकार आँखें फाड़ कर वह तैलप की ओर चिल्लायी, "कहाँ ? भिल्लम राज ! हाँ, ले चलो मुझको मेरे स्यून देश। आज इस भूमि का अन्न-जल मुझे ज़हर हो गया है। पर तुम क्या करोगे ? तुम तो दास हो, हाथ में चूड़ियाँ पहन रक्खी है, हीजड़ों की संगति में बैठे हो तुम क्या ले जाओगे ? मैं स्वयं जाऊँगी, मैं चालुक्य महाराजाओं की राजकुमारी हूँ। सहस्रों वीरांगनाओं का रक्त मेरी धमनियों में बह रहा है। मैं अकेली ही बहुत हूँ—मेरी लड़की के प्राण लिये, मेरे देश को डुबाया, उसका खून पिया," वह अकलंक की तरफ़ फिरी, "नरपिशाच चाण्डाल ! यदि तेरा खून पिउँ तो तभी शान्ति हो।"

भिल्लम की आँख में भयंकर तेज आया और साथ बोलने की शक्ति भी। "देवी ! अब तो चलो।"

"हाँ, चलो स्यूनदेश, इस नरक-भूमि में तो अब पल भर भी नहीं रहना" सत्ता से लक्ष्मी ने कहा।

"भिल्लम !" ज़रा आगे आ कर तैलप बोला, "इसको ले जाते हो या नहीं ?"

धीरे से भिल्लम आगे आया और लक्ष्मीदेवी तथा तैलप के बीच खड़े हो कर वह गरज पड़ा।

"खबरदार ! देवी, ठीक कहती है चलो अपने देश," कह कर उसने लक्ष्मीदेवी का हाथ पकड़ लिया और उसे खींच कर ले जाने लगा। उसका शरीर विशाल और स्वस्थ था। उसकी आवाज़ दबी हुई थी, पर भयंकर थी।

इतने में उसकी दृष्टि नीचे पड़े हुए शंख पर गई. उसने उसे उठा लिया और अपने सैनिकों को बुलाने के लिये शंखनाद किया।

तैलप इस शंखनाद का अर्थ समझ गया, वह क्रोधावेश में आगे आया।

"भिल्लम ! यह क्या करता है ? तू भी पागल हो गया क्या ?"

भिल्लम तैलप से एक हाथ ऊँचा था. उसने अपनी शक्तिशाली कलाई तैलप के सिर पर रक्खी।

"क्या ?"

तैलप दो क़दम पीछे खसका और होठ दबा कर बोला, "इस समय मान्यखेट नहीं छोड़ा जा सकता।"

"देखता हूँ कौन रोकता है ?" ऐसा कह कर भिल्लम शंखनाद सुन कर आये हुए सैनिकों की ओर मुड़ा. "घोड़ा लावो अपने स्यूनदेश जाना है" कह कर वह लक्ष्मीदेवी को साथ ले कर चल दिया। बीच में पड़ने की शक्ति किसी में भी न थी क्योंकि भिल्लम का प्रचण्ड बाहुबल जगत् प्रसिद्ध था। थोड़ी देर तक सब चित्रलिखित से खड़े रहे।

"अकलंक ! राजगढ़ और गाँव के द्वार बन्द करा दो," तैलप ने कहा।

जवाब में स्यूनराज का शंखनाद दूर से सुनाई दिया और महल में योद्धाओं की दौड़ा दौड़ मच गई।

देखते ही देखते स्यूनराज के योद्धा सुसज्जित हो गये। लक्ष्मीदेवी की भयंकर मुख-मुद्रा तथा विलास के सिर की विजय-ध्वजा ने एक ऐसी

प्रेरणा फूँक दी थी कि प्रत्येक के रोम-रोम में क्रोध व्याप्त हो उठा था। देखते ही देखते वे घोड़ों पर चढ़े और विजयघोष करते हुए आगे बढ़ गये। अकलंक ने पूरी शक्ति लगा कर योद्धाओं को तैयार किया और इन योद्धाओं को उन्हें रोकने के लिये भेजा।

स्यूनराज और उसके योद्धा क्रोधावेश में आगे बढ़े और मान्यखेट के द्वार पर युद्ध हुआ।

भिल्लमराज और लक्ष्मीदेवी ने प्रलय मचा दी। उनके सैनिकों ने शौर्य की पराकाष्ठा पर पहुँच कर रक्त की नदियाँ बहा दीं, उन नदियों को पार कर यह छोटी-सी सेना मान्यखेट छोड़ कर आगे बढ़ी और गोदावरी के पार भोज से मिली।

३२

भिक्षा

मृणालवती इस समय नीच से नीच प्राणी की अक्षमता और मान-हीनता का अनुभव कर रही थी। उसने जो सोचा था वही परिणाम नहीं हुआ बल्कि सदा के लिये मुंज भी हाथ से निकल गया—कदाचित् अब उसका जीवन न बच सके। साथ-साथ सारी दुनिया में उसकी फ़जेती हुई और वैराग्य के आडम्बर मे जो मान, सत्ता और शान्ति मिली थी वे सब समूल नष्ट हो गये। अंत में लक्ष्मीदेवी ने एक ही वाक्य से सारे जन्मों का बदला ले लिया और आज से तैलंगण का कौआ और कुत्ता भी उसकी ओर नहीं देखेगा ऐसी अधोगति को वह पहुँची। सुख गया, पुण्य गया, वैराग्य गया, मान गया, सत्ता गई, इस पर भी न तो वह पृथ्वी में समा गयी और न यमराज ही उसे ले गया।

वह अपने भवन में गई और उदास मुख ले कर बैठ गई। वह न तो अपनी प्रकृतिस्थ दशा में ही रह सकी, न रो सकी और न कोई दूसरा मार्ग ही खोज सकी। विलास की लालसा, सत्ता का चाव, और वैराग्य का मोह जैसे वैतरणी के पार गये हुए अपने स्वजन हों इस प्रकार दूर से ही मृणाल को अंतिम प्रणाम कर गये और वह आँखों में आँसू भरे हुए वहीं पड़ी रही,—न तो उनको बुला ही सकी और न उनके लिये वह स्वयं वैतरणी पार कर सकी।

मरने का मन हुआ—पर यमराज का स्वागत करने की हिम्मत न होती थी, इतना होते हुए भी उसे तैलप और यमराज इन दोनों में यमराज की शरण तुच्छ और अरुचिकर लगती थी।

पर कदाचित् विष का प्याला अधूरा रह गया हो उसी प्रकार तैलप

के क़दम उस ओर आते हुए सुनाई दिये, अब उनमें स्वस्थता को लाने की शक्ति न थी, और मृणाल में इतना भी स्वमान अवशेष न रहा था कि वह अपना मुख तैलप को दिखा सके, जैसे थी, वैसे ही बिजली के आघात से गिरे हुए घर की तरह, निराधार और विवश-सी बैठी रही।

तैलप आया। उसको इतनी देर में मृणाल के ज़हर पीने की ख़बर मिल गई थी। समय, कुसमय मृणाल का मुञ्ज से मिलना, अकलंक को दी हुई उसकी सूचना और लक्ष्मीदेवी के व्यंग से—इन सबसे उसे विश्वास हो गया था कि मृणाल ही ने विषय लालसा में मुंज को छुड़ाने का षड्यंत्र खड़ा किया था। इससे उसकी अशान्ति का पारावार न रहा। मृणाल वैराग्य छोड़ कर विषयी बने, मुंज को निकल भागने में सहायता करे, षड्यंत्रकारी निकल भागे, जाते-जाते अकलंक को हराते जायें, भिल्लम जैसा शूरवीर योद्धा उसे छोड़ कर स्वातंत्र्य का झंडा उठाये—इन सब, एक के बाद दूसरे, पड़े हुए आघातों से वह व्याकुल हो उठा था। एक पल में मृणाल की बुद्धि और भिल्लम के बाहुबल का सहारा जाता रहा और भिल्लम और भोज जैसे प्रतापी शत्रु पैदा हो गये—यह चिन्ता उसके हृदय को अभिभूत किये हुए थी, और इसके साथ मृणाल के पतन का कलंक लगा, यह दुःसह दुख उस बिचारे को ऐसे ही खल रहा था जैसे वह विजय-शिखर से खाई में गिर गया हो।

पर इस चिन्ता में से निकलने का मार्ग सूझ निकालने की या अपनी खंडित योजना का फिर निर्माण करने की न तो उसको फ़ुर्सत ही थी और न शक्ति ही थी। इस समय वह एकमात्र क्रोध और द्वेष के आधीन हो रहा था—और इन दोनों के केन्द्र-स्थान मुंज और मृणाल थे।

वह आया और थोड़ी देर तक चुपचाप तिरस्कार से मृणाल को देखता रहा। उसकी छोटी-छोटी आँखों में अनिर्वाच्य द्वेष था; उसके होठों पर भयंकर तिरस्कार की छाप थी, उसका हृदय, इस द्वेष और

तिरस्कार की आग में किसी को भी भस्म करने के लिये तिलमिला रहा था।

'क्यों तैलगण का राजमाता!" उसने क्रूर और शांत स्वर में कहा, "अवंती कितनी दूर है?"

मृणाल देखती रही, शिकारी से घेर ली गई हरिणी की निराशा भरी आँखों से। क्या कहे यह उसे न सूझा, तैलप ने आगे कहा—

"कुलांगार! ऐसा करने से तो माँ के पेट से तेरी जगह पत्थर पैदा हुए होते तो ठीक था। निष्कलंक, तपस्विनी!" कह कर तैलप खिलखिला कर हँसा, "कैसा तेरा वैराग्य और कैसी तेरी नीति! ऐसा करते हुए तो तैलंगण की वेश्या भी लज्जा से मर जाती।"

मृणाल ने नीचे से ऊपर की ओर देखा, उसकी फाका आँखों में निराशा थी। वह तैलप के शब्दों का कुछ आशय समझने का प्रयत्न करने लगी।

तिरस्कार से हँस कर तैलप बोला, "तुझे तैलंगण में दूसरा कोई नहीं मिला कि मुंज पर ही मोहित हो गई" जैसे प्रत्येक शब्द में खंजर हो, इस प्रकार कसाई की रसभरी क्रूरता से वह बहन के हृदय में धीरे-धीरे मार रहा था।

मरता हुआ प्राणी भी जिस प्रकार निरर्थक आघातों की क्रूरता से अपने क्रोध को शांत नहीं कर पाता उसी प्रकार इस निराधार परिस्थिति में पागल बनी हुई मृणाल में भी क्रोध के अंकुर फूटे। उसने अपना सर्वस्व गँवा दिया था, पर मुंज के प्रति मोह ज्यों का त्यों बना हुआ था। अपने को कहे हुए अपशब्दों की उसे पर्वाह न थी, पर मुंज—उसके हृदय में रमी हुई एकमात्र मूर्ति—उसका ज़रा-सा अपमान भी उसके हृदय को बेध गया। तैलप की ओर मृणाल देखती रही और थोड़ी देर बाद बोली—

"तैलंगण तो क्या सारी पृथ्वी पर तो उसका जोड़ बता!"

तैलप की आँख में भयंकर तेज चमक उठा; उसके होंठ काँप उठे, उसके क्रोध और द्वेष पर पड़ा हुआ तिरस्कार का पर्दा खिसक गया। उसने आँखें निकाल कर पूछा।

"बेशरम मेरे सामने भी यह कहते हुए लजाती नहीं ?"

"किस लिये लजाऊँ ?" मृणाल ने खिन्नता से कहा। उसका प्रभावशाली स्वभाव धीरे-धीरे अपने साम्राज्य का प्रसार करता गया, "तू न तो मेरे वैराग्य को समझता है और न मेरे मोह को। मुंज की हँसी उड़ाता है ! मूर्ख ! तेरे जैसे दस हज़ार तैलप इकट्ठे हो जायें तो भी उसे नहीं पा सकते" कह कर तैलप के सामने खड़ी हो गई।

"शाबास तपस्विनी ! शाबाश तैलंगण की राजमाता ! तेरे मुख से ये शब्द कैसे अच्छे लग रहे हैं ?"

"अच्छे लग रहे हों या न लग रहे हों इसकी मुझे पर्वाह नहीं। मेरा हाथ इस समय दबा हुआ है, मेरा जीवन मेरी हथेली पर है, मेरे मरने पर कोई भी आहें भरने वाला नहीं। मैं उग्र तापसी थी, तैलंगण की राज्यविधात्री थी; अब सब मुझे कुलटा कह कर मेरे नाम पर थूकेंगे" मृणाल श्वास लेने के लिये ज़रा रुकी और तलप ज़ोर हँसा।

"इस पर भी मुझे जितना गर्व तपस्विनी होने पर था जितना गर्व तेरी बहिन और राज्य की विधात्री होने में अनुभव करती था—उससे अधिक गर्व पृथ्वी वल्लभ की वल्लभा होने में अनुभव कर रही हूँ।"

"हाँ-हाँ-हाँ," तैलप ज़ोर से हँसा, "तब तू भी देख। मैंने अब तक तो तुझे माता के समान - अपने परमेश्वर के समान समझा, पर अब पूरा-पूरा मज़ा चखाऊँगा।"

"तू क्या मज़ा चखायेगा ? मुझ भाग्यफूटी को तो विधाता ने ही मज़ा चखाने में कमी नहीं छोड़ी" मृणाल ने दुःख भरे स्वर में कहा।

"पहले तो तेरे पृथ्वी वल्लभ को मज़ा चखाता हूँ और फिर तुम्हें।"

"वह तो सदा ही सुख का स्वाद चखता रहता है, उसका तू क्या बिगाड़ सकता है ?"

"अभी तुझे मेरे प्रताप की खबर नहीं !"

अब मृणाल के तिरस्कारपूर्वक हँसने का समय था। वह हँसी।

तैलप ने उसे धुड़क दिया और चुपचाप खिड़की खोलकर बोला—"देख ले !"

मृणाल ने एक क़दम आगे आ कर देखा; बाहर गली में एक घर के द्वार पर मुंज खड़ा था, उसके हाथों और पैरों में बेड़ियाँ थीं। उसके हाथ में भिक्षापात्र था, उसके पीछे-पीछे दो खड्गधारी सैनिक चल रहे थे।

"तेरा पृथ्वी वल्लभ सात दिन तक घर-घर टुकड़ा माँग कर खायेगा और फिर "

"फिर क्या ?" एक दीर्घ श्वास लेते हुए मृणाल ने पूछा।

"फिर —जहाँ तू न मिल सके वहाँ,—यमपुर।"

"कैसे समझा ?"

इस समय ऐसी करुणाजनक अधमता में भी मुंज पर वैसा ही तेज था। उसके मुख पर शांति और आनन्द के चिह्न थे। उसकी आँखें घड़ी में सैनिकों के साथ, घड़ी में रास्ता चलने वालों के साथ बातें करती रहती थीं; उसके गौरव में या स्वास्थ्य में तनिक भी अन्तर न हुआ था। उसके हाथ में बेड़ी और भिक्षापात्र राज्यचिह्न जैसे लगते थे।

जिस घर के आगे मुंज खड़ा था उसमें से एक युवती निकली और सहसा मुंज तथा सैनिकों को देख कर पीछे हट गई।

"सुंदरी ! घबराने का क्या काम है ?" स्नेह और सम्मान भरे नेत्रों को उस स्त्री पर स्थिर कर मुंज ने हँसकर कहा।

'महाराज !—" वह स्त्री क्षोभ से बोली। "इससे बढ़ कर और क्या ?"

"ऐसा न होता तो मान्यखेट के नागरिकों को पृथ्वीवल्लभ की पहचान ही कैसे पड़ती ? घर में कुछ है ? हो तो दे।"

"महाराज ! इस समय—"

"जो कुछ भी हो, तैलप के राजभवन के पकवानों से तो अच्छा ही होगा। हाँ, देखूँ तो पाकशास्त्र किसका सरस है—अवंती का या मान्यखेट का ?"

वह स्त्री दौड़ती-दौड़ती घर में गई और कुछ खाने को लाई और मुंज के भिक्षापात्र में उलट दिया।

मुंज ने मुस्कराती हुई आँखों से कहा, "सुन्दरी ! इतना याद रखना" यह कह कर एक संस्कृत श्लोक पढ़ा।

वह स्त्री उसका आशय न समझने से खोई हुई-सी देखती रही। मुंज ने हँस कर कहा, "हाँ, भूला यह अवंती नहीं, देख चन्द्रलेखा ! तेरे इन पुष्पमाला जैसे करों के सुकुमार पाश से यदि तेरा प्रियतम निकलना—भागना चाहे तो उसे मूर्ख समझ कर तिरस्कृत कर देना। कारण, कि पृथ्वी वल्लभ भी—वह हाथ था या मृणाल-तंतु—इस भ्रम में पड़ कर, भिक्षापात्र में क्या उँडेला यह भी देखना भूल गया।"

वह स्त्री लज्जित-सी नीचे देखती रही, उसका मुख हँस-हँस कर रह गया और मुंज भी आनन्द से हँसता रहा।

"यह देखा अपना पृथ्वी वल्लभ ?" मुंज दूसरी गली में मुड़ा कि तुरन्त तैलप ने मृणाल से कहा।

"मैंने तो कब का देख रक्खा है, तू देख ले नहीं तो रह जायगा।" मृणाल ने तिरस्कार से कहा, "पृथ्वी वल्लभ तो यही है ! तू प्राण भी दे दे, तब भी ऐसा नहीं बन सकता !" कह कर वह वहाँ से चल दी।

होठ चबाता हुआ तैलप भी वहाँ से चला गया।

३३

मुंज किस प्रकार अटल रहा ?

सात दिन तक मुंज ने भिक्षा माँगी और अपनी दिग्विजय की। सारा नगर उसके पीछे पागल हो गया था, प्रत्येक स्त्री-पुरुष तैलप को शाप देने लगे थे और प्रत्येक नागरिक को मुंज के कुचलवाये जाने म आपत्ति थी।

पर इस समय तैलप को छलना असम्भव था, मृणाल पर, मुज पर और मुंज के साथ बोलने वाले पर सख्त पहरा रहता था और प्रत्येक शब्द तैलप के कान तक पहुँचाया जाता था। तैलप को धीरे-धीरे मालवराज के चमत्कारी व्यक्तित्व और अपनी जीती हुई बाजी के हार जाने का भान हुआ और जैसे-जैसे यह भान होता गया वैसे-वैसे वह मुज को मार डालने का संकल्प दृढ़ करता गया।

ढिंढोरा पिटवा कर राज्य में घोषणा करवा दी कि आज से सातवें दिन, मृणालवती से अन्तिम भिक्षा माँग लेने के पश्चात् उसको हाथी के पैर से कुचलवा दिया जायगा। और इस विजय-महोत्सव में भाग लेने के लिए उसने सारे देश को निमंत्रण दिया।

सम्पूर्ण देश दंग रह गया। सहस्रों अंतस्तलों से क्रोध के तथा तिरस्कार के उद्गार निकले, सहस्रों आँखों से आँसू बहे, और हज़ारों निश्वासों ने इस अन्याय का मौन प्रतिरोध किया।

पर तैलप का संकल्प निश्चल था। सातवें दिन संपूर्ण देश राज-भवन के आगे वाले मैदान में इकट्ठा हुआ। चारों ओर, खिड़कियों में, छज्जों पर और छप्परों पर लोगों की भीड़ जमा हो गई थी।

राजभवन के चबूतरे पर मृणालवती, म्लान और गम्भीर वदन खड़ी

थी। उसके कुरूप मुख पर शोक के सौंदर्य की छाप थी। उसकी आँखें रो-रो कर लाल हो गई थीं। बार-बार उसके हृदय से निश्वास निकलते थे। जिससे सब लोग काँपते थे आज उसी को वे दयासिक्त दृष्टि से देख रहे थे। पर कोई भी सामान्य स्त्री-पुरुष उसके आचरण पर कलंक लगाने की कठोरता का विचार मन में भी न लाता था।

मृणाल से भिक्षा मँगा कर वह उसे क्षुद्रता का कठोर से कठोर अनुभव कराये ऐसा तैलप का विचार था। मृणाल इस हेतु को समझ गई और पहले उसने ऐसा करने के लिए इन्कार कर दिया, पर तैलप ने उसे पल भर के लिए भी मुंज से मिलने के लिए मना कर दिया था और इस हृदय-भेदक शर्त को स्वीकार करने के अतिरिक्त मुंज से मिलने का और दूसरा अवसर न था इसलिये अन्त में वह मान गई। उसके कठोर हृदय के लिये भी यह आघात असह्य था।

मृणाल के एक ओर रानी जक्कला देवी तथा और कितनी ही सखियाँ खड़ी थीं। रानी का मुख भी फ़ीका तथा चिन्तायुक्त था। सामने तैलप खड़ा था। उसके मुख पर क्रूरता और निश्चलता थी, उसकी आँखों में द्वेष और विजय का उल्लास था, वह अपने जानी दुश्मन पृथ्वी वल्लभ और माँ जैसी बहिन मृणाल का अन्तिम हृदय-विदारक मिलाप देखे—इन दोनों की वेदना देख कर प्रसन्न हो—इसी आशा में आतुर वहाँ खड़ा था।

बीच में खुली जगह में एक मदोन्मत्त हाथी घूम रहा था। उसे नशे में मदमस्त बना दिया था। उस पर एक अनुभवी महावत बड़ी मुश्किल से उसे वश में रख रहा था। हाथी अपनी लाल-लाल आँखें नागरिकों की ओर चमका रहा था, और थोड़ी-थोड़ी देर बाद सूँड़ फैला कर चिंघाड़ता था और अपना क्रोध प्रकट करता था। मुंज कारागृह में से निकाल कर लाया गया। लोगों में शांति फैल गई और सब उसकी ओर एकटक देखने लगे।

बिना किसी के ले जाये हुए तथा बिना किसी के कहे हुए वह

सीधा जहाँ मृणाल खड़ी थी वहाँ आया और हँसा। उसका हास आज अन्तिम पलों में भी सदा की तरह मोहक था।

"क्यों मृणालवती !" बहुत दिनों बाद प्रियतमा से मिला हो, ऐसी प्रतिध्वनि उसके शब्दों से निकली। मृणाल अपनी सदा की हँसी न हँस सकी पर तुरंत मुंज के मंजु हास्य का जादू उस पर असर कर गया। वह हँसी; मधुर, धीरे, म्लानवदन से। उसकी आँखें स्नेहसिक्त हो गईं। दोनों की तेजस्विनी दृष्टियों ने एक दूसरे का आलिंगन किया। सब दीर्घ श्वास भर-भर कर उन्हें देखते रहे।

"अब क्या दान दोगी ?" रसिक प्रणयी एकांत में जिस मधुरता से पूछता हो उसी मधुरता से पृथ्वी वल्लभ ने पूछा, "जो था वह तो कब का दे चुकी !"

मृणालवती ये शब्द सुन कर उन्मादिनी हो गई, उसके रोम-रोम को प्रणय मारुत की भयंकर सरसराहट छू गई, वह दुःख, समय और स्थल सब कुछ भूल गई। केवल मोहांध नेत्रों से अपने हृदयनाथ की रसिक मूर्ति निहार रही थी।

"सुंदरी, घबराने का कारण नहीं, यह दुनिया तो असुंदर है, मूर्ख है, और है एकमात्र रहने का स्थान। तुमने तो अपने जीवन को सरस किया है—दुनिया चाहे कुछ भी कहे।"

मृणाल की चेतना विलुप्त हो गई। तैलप का, नागरिकों का, और लोक-लाज का तनिक भी ध्यान न रहा। भिक्षा देने का पात्र हाथ से फेंक दिया और दौड़ कर मुंज के बेड़ियों से बँधे हुए चरणों से लिपट गई।

"क्षमा करो महाराज ! पृथ्वी वल्लभ ! मैंने तुम्हें जीते जी मरवाया है।" कह कर मृणाल ने मुंज के चरणों की रज सिर पर रख ली।

"तुमने ! मेरी मृत्यु तो जब मैं पैदा हुआ था तभी निश्चय हो गई थी, उसमें तुम्हारा क्या वश चल सकता था ! उठो !"

यह देख कर तैलप चबूतरे पर से कूदा और मृणाल का हाथ

पकड़ कर उससे छुड़ाने लगा। लोगों की तथा सैनिकों की आँखें आंसू बरसाने लगीं।

"तैलप! मुझ पर आया हुआ क्रोध इस बिचारी पर निकालने से क्या फ़ायदा?"

"चुप रह! चाण्डाल!"

"किस लिये रहूँ?" हँस कर मुँज ने कहा, "चुप रहने का समय तो तेरा है, इस समय तेरी दिग्विजय पूरी हो गई।"

गुस्से के कारण तैलप को कोई उत्तर न सूझा। मुंज ने अपना तेजस्वी मुख चारों ओर घुमाया, हँसा और सब को सुनाई दे इस प्रकार कहा —

"मूर्ख! देखता नहीं अवंती के सिंहासन पर सिंह के समान भोज गर्जता है और स्यून देश में भिल्लम मेरा बदला लेने के लिये तिलमिला रहा है। तेरी बहिन, और प्रजा तेरी नहीं रही; मेरी हो गई है। फिर विजय किसकी, मेरी या तेरी?"

"अब मेरा हाथी तेरी विजय दिखायेगा।" कह कर तैलप मृणाल को चबूतरे पर बिठा कर आगे आया।

मुंज खिलखिला कर हँसा।

"इसमें मेरी विजय या तेरी? तू मुझे झुकाना चाहता है और मैं बिना झुके अपना जीवन पूरा कर दूँगा। तू नीति का आडंबर रचता था अब उसे छोड़ कर इस समय राज-हत्या का पाप बटोर रहा है। विजेता कौन मै या तू?"

मुंज का तिरस्कार भरा स्वर पृथ्वी में गरज उठा।

तैलप ने आकुलता से होठ काट लिये और उसकी आँखों में से विषैली रश्मियाँ फूट पड़ीं।

"सैनिको, पकड़ो इसे!"

"किस लिये? लो मैं स्वयं ही चला।" कह कर गजेंद्र सदृश, गौरव से क़दम धरता हुआ गजराज की तरफ़ चला।

सब देख रहे थे—आँखें फाड़-फाड़ कर। सब का श्वास रुँध गया था। मुंज शांति से आगे बढ़ रहा था, पीछे-पीछे तैलप के कुछ सैनिक थे।

हाथी के सामने आकर मुंज खड़ा रहा। तैलप की आज्ञा से सैनिकों ने उसकी बेड़ी निकाल दी।

बेड़ियों से मुक्त होते ही मुंज सीधा खड़ा हो गया। उसने अपने माथे पर पड़े हुए बाल ऊपर किये और विशाल भाल से आभासित मुख लोगों की तथा मृणाल की ओर फेरा। उसकी आँखों में निडरता थी और वही थी पृथ्वी की वल्लभता की सूचक। उसके अधरों पर मधुर, गौरव भरा हास दमक रहा था।

लोग काँप उठे। कितने ही स्त्री-पुरुष रोने लगे। मृणाल पागल की तरह देखती रही, सैनिकों ने होठ से होठ दबा कर अपना कर्त्तव्य पालन किया।

"तैलप !" शाँति से मुंज ने कहा, "देख ! देख ! आखिर मेरी मृत्यु पृथ्वी वल्लभ को सुशोभित करने वाली हुई न ?"

तैलप निश्चल ओठों में क्रूरता भरे हुए खड़ा था। उसके हृदय में निराशा फैला हुई थी। उसे ऐसा लग रहा था कि मरते-मरते भी मुंज अपनी विजय, पताका फहरा रहा हो। मुंज ज़रा खिन्न हो जाये और उसकी वल्लभता ज़रा विलुप्त होवे इसी प्रतीक्षा में वह खड़ा था।

"चल, नहीं तो सैनिकों को बुलाऊँ !"

मुंज ने एक तिरस्कार भरी दृष्टि तैलप पर डाली और हाथी की सूँड़ के पास दो क़दम आगे आ गया।

वहाँ जाकर वह निश्चल रीति से तन कर खड़ा हो गया।

तैलप को चाहा हुआ अवसर मिला—"क्यों घबराया अब ?"

"पृथ्वी वल्लभ घबराये तो पृथ्वी रसातल में चली जाये, पागल ! यह तो केवल एकमात्र विचार आया था।"

"क्या ?"

"यहां कि—" गर्व से मुंज ने सिर ऊंचा किया, उसकी आंख ज़रा स्नेहार्द्र हो आईं, "बेचारी सरस्वती का क्या होगा ?"

लक्ष्मीर्यास्यति गोविंदे वीरश्रीर्वीरवेश्मनि ।
गते मुंजे यशःपुञ्जे, निरालंबा सरस्वती ॥*

इतना कह कर स्वाभाविक तिरस्कार से तैलप की तरफ़ पीठ फेर ली और हाथी की तरफ़ मुड़ गया ।

"गजराज ! राजाओं में गज सदृश पृथ्वी वल्लभ तेरे पास आया है ।"

थोड़ी देर जैसे किसी विचार में डूबा हो इस प्रकार हाथी सूँड़ हिलाता रहा और मुंज उसको हाथ से सहलाता रहा । अंत में शांति से वह उसकी सूंड़ से चिपट गया और ऊपर से महावत ने अंकुश मारा । हाथी ने सूंड में लपेट कर मुंज को ऊपर उठा लिया ।

हाथी ने सूँड़ का सिरा ऊपर किया नीचे किया, इसी बीच में अनेक बार हँसता हुआ, प्रभाव भरी आँखें गर्व से दिखलाता हुआ पृथ्वी वल्लभ, कालीनाग नाथते हुए श्रीकृष्ण सदृश शोभायुक्त लोगों की आँखों में समा गया । गजेन्द्र ने घोष किया और सूँड़ को एक और झटका दिया । पृथ्वी वल्लभ का जयघोष गूंज उठा—

"जय महाकाल !"

लोगों में हाहाकार मच गया—मृणालवती का गगन-भेदी क्रंदन गूंज उठा । मुंज हाथी के पैर नीचे अदृष्ट हो गया था । हाथी ने पैर रक्खा—ज़ोर दिया; कुचले जाने की आवाज़ हुई और उसने अपना पैर उठा लिया ।

ज़मीन पर पृथ्वी वल्लभ का शव कुचली हुई रोटी के सदृश पड़ा था ।

***लक्ष्मी तो गोविंद के पास चली जायगी, कीर्ति वीरों के पास चली जायगी, पर यश के पुंजरूप मुंजराज के मरते ही, बेचारी सरस्वती निराश्रिता हो जायगी ।**

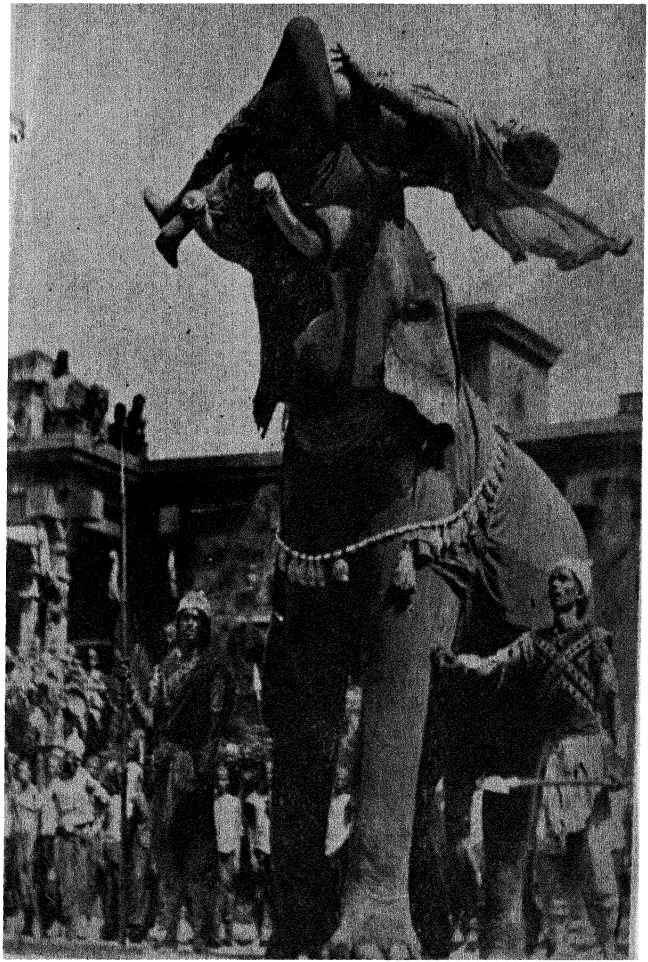

'महावत ने अंकुश मारा और हाथी ने सूँड में लपेट कर मुंज को ऊपर उठा लिया।'
[पृ० १।